क्या हम स्वथ्य रहना चाहते हैं?

स्वकथन

मानव शरीर स्वयं में परिपूर्ण

मनुष्य का शरीर दुनियाँ की सर्वश्रेष्ठ स्वचलित, स्वनियन्त्रित स्व-अनुशासित मशीन होती है। अच्छे स्वचलित यंत्र में खतरा उपस्थित होने पर स्वतः उसको ठीक करने की व्यवस्था होती है। अतः हमारे शरीर में रोगों से बचने की सुरक्षा व्यवस्था तथा रोग होने पर पुनः स्वस्थ बनाने की व्यवस्था न हो, यह कैसे संभव हो सकता है? वास्तव में स्वास्थ्य के लिए हमारे शरीर में, प्रकृति में और आस-पास के वातावरण में समाधान भरे पड़े हैं। परन्तु उस व्यक्ति के लिए जो अपनी असीम क्षमताओं से अपरिचित हो, जिसका चिन्तन सम्यक् न हो, जो भविष्य में पड़ने वाले दुष्प्रभावों के प्रति बेखबर एवं भ्रान्त पूर्वाग्रहों से ग्रसित हो, उसके लिए वे समाधान सामने होते हुए भी नजर नहीं आते हैं।

यदि हमारे शरीर के किसी भाग में कोई तीक्ष्ण वस्तु जैसे पिन, सूई, काँटा आदि चुभे तो सारे शरीर में छटपटाहट हो जाती है। आँखों में पानी आने लगता है, मुँह से चीख निकलने लगती है। शरीर की सारी इन्द्रियाँ और मन अपना कार्य रोककर क्षण भर के लिए उस स्थान पर केन्द्रित हो जाते हैं। उस समय न तो मधुर संगीत सुनना ही अच्छा लगता है और न मनभावन सुन्दर दृश्यों को देखना। न हँसी मजाक अच्छी लगती है और न अपने प्रियजन से बातचीत अथवा अच्छे से अच्छा खाना-पीना आदि। हमारा सारा प्रयास सबसे पहले उस चुभन को दूर करने में लग जाता है। जैसे ही चुभन दूर होती है, हम राहत अनुभव करते हैं। कहने का तात्पर्य यही है कि चाहे चुभन हो या आंखों में कोई बाह्य कचरा चला जाए अथवा भोजन करते समय गलती से भोजन का कोई अंश भोजन नली की बजाय श्वास नली में चला जाए तो शरीर तुरन्त प्रतिक्रिया कर उस समस्या का प्राथमिकता से निवारण करता है।

जिस शरीर में इतना आपसी सहयोग, समन्वय, समर्पण, तालमेल एवं अनुशासन हो अर्थात् शरीर के किसी भाग में पीड़ा अथवा दुःख से सारा शरीर दुःखी हो तो क्या ऐसे शरीर में डा ॅक्टरों द्वारा किसी भी नाम विशेष द्वारा पुकारे जाने वाले छोटे-बड़े रोग पनप सकते हैं?

उपचार से पूर्व निदान की सत्यता पर समीक्षा आवश्यक

आधुनिक चिकित्सक प्रायः मुख्य लक्षणों एवं पैथालोजिकल परीक्षणों के आधार पर रोगों का नाम बताते हैं। प्रायः शरीर के प्रत्येक अंग के विशेषज्ञ अलग-अलग होते हैं। परन्तु शरीर अविभाज्य है। अतः शरीर के किसी भाग की खराबी अथवा असंतुलन से पूरा शरीर प्रभावित होता है। प्रकृति के सर्वमान्य यिन-यांग के सिद्धान्तानुसार भी शरीर के प्रत्येक अंग का पूरक अंग होता है। जैसे हृदय का छोटी आंत, तिल्ली का आमाशय आदि। वे अंग पति-पत्नी की भांति एक दूसरे के पूरक होते हैं। अतः किसी एक अंग में रोग होने की अवस्था में उसके सहयोगी अंग पर भी उसका विशेष प्रभाव पड़े बिना नहीं रहता। अधिकांश चिकित्सा पद्धतियाँ प्रायः उसी अंग का उपचार करती हैं, जिनके लक्षण उनके ध्यान में आते हैं। परन्तु यदि रोग का कारण उसका पूरक अंग में हो तो बहुत प्रयास करने के बावजूद रोगों से राहत न दिला पाने के कारण उस रोग को असाध्य बतला दिया जाता है। जैसे यदि कोई व्यक्ति अपने पत्नी के संक्रामक रोग के कारण तनावग्रस्त हो तो, उस व्यक्ति का तनाव तब तक दूर नहीं किया जा सकता, जब तक उसकी पत्नी रोग मुक्त नहीं होती। पति का उपचार करना विशेष लाभप्रद नहीं होता। वास्तव में चिकित्सकों द्वारा जिन लक्षणों के आधार पर रोगों का निदान और नामकरण किया जाता है, वे अकेले ही रोग नहीं होते, अपितु रोगों के परिवार के नेता होते हैं, जिन्हें सैकड़ों अप्रत्यक्ष सहायक रोगों का समर्थन प्राप्त होता है। परन्तु प्रायः चिकित्सकों का अप्रत्यक्ष रोगों की तरफ ध्यान ही नहीं जाता और न वे अप्रत्यक्ष रोगों को रोग ही मानते हैं। उपचार करते समय चिकित्सक एवं रोगी का पूरा प्रयास बाह्य लक्षणों को दूर कर नामधारी रोगों से राहत पाने का ही होता है। जनतंत्र में नेता को हटाने का एक उपाय है। जिस सहयोग और समर्थन से उसका चयन होता है, उसकी ठीक विपरीत प्रक्रिया (असहयोग एवं विरोध) द्वारा उसको हटाया जा सकता है। बिना समर्थकों को अलग

किये, जैसे नेता को बदलना सरल नहीं, उसी प्रकार रोग में सहयोगी रोगों की उपेक्षा कर रोग से पूर्ण रूप से मुक्त करने का दावा खोखला लगता है। ऐसा निदान और उपचार अधूरा ही होता है।

दुष्प्रभावों की उपेक्षा भविष्य में अधिक घातक

शरीर की प्रतिकारात्मक शक्ति रोगों से हमारी रक्षा करती है। उसको क्षीण करने में गर्भावस्था से ही ली जाने वाली आधुनिक दवाइयों, इंजेक्शनों और टीकाकरण से पड़ने वाले दुष्प्रभावों की अहम भूमिका होती है। जिनकी प्रतिरोधक क्षमता अच्छी होती है,उसका वायरस और बैक्टीरिया क्या बिगाड़ सकते हैं? अर्थात् वे उसे रोगी नहीं बना सकते हैं।

स्वावलम्बी उपचार कितना सरल

हम साल के 365 दिनों में अपने घरों में बिजली के तकनीशियन को प्रायः 8 से 10 बार से अधिक नहीं बुलाते। 355 दिन जैसे स्विच चालू करने की कला जानने वाला बिजली के उपकरणों का उपयोग आसानी से कर सकता है। उसे यह जानने की आवश्यकता नहीं होती कि बिजली का आविश्कार किसने, कब और कहाँ किया? बिजलीघर से बिजली कैसे आती है? कितना वोल्टेज, करेन्ट ओर फ्रिक्वेन्सी है? मात्र स्विच चालू करने की कला जानने वाला उपलब्ध बिजली का उपयोग कर सकता है। विभिन्न स्वावलम्बी अहिंसात्मक चिकित्सा पद्धतियों की ऐसी साधारण जानकारी से व्यक्ति न केवल स्वयं को स्वस्थ रख सकता है, अपितु असाध्य से असाध्य रोगों का बिना किसी दुश्प्रभाव प्रभावशाली ढंग से उपचार भी कर सकता है। स्विच चालू करने की प्रक्रिया चंद मिन्टों में कोई भी सीख सकता है। मोबाइल का उपयोग करने वालों को बातचीत करने हेतु मोबाइल के सारे पुर्जो की जानकारी आवश्यक नहीं होती। ठीक उसी प्रकार साधारण परिस्थितियों में स्वस्थ रहने हेतु जनसाधारण को शरीर विज्ञान की विस्तृत जानकारी की आवश्यकता नहीं होती।

अनावश्यक पराधीनता क्षमताओं के सदुपयोग में बाधक

एक व्यक्ति ने अपने पड़ौसी अथवा स्नेही परिजन को कहा-‘‘कृपया आप मेरे घर की सुरक्षा का ख्याल रखना।’’ पड़ौसी अथवा परिजन ने उसके अनुरोध का कारण पूछा। व्यक्ति ने सहज भाव से उत्तर दिया- ‘‘सर्दी का मौसम है और आसपास चोरों का भय है। मैं घर में ही निद्रा ले रहा हूँ। मेरी निद्रा में बाधा उत्पन्न नहीं हो, इसी कारण आपके सहयोग की अपेक्षा है।’’ क्या ऐसे व्यक्ति को हम असजग, आलसी अथवा निश्क्रिय तो नहीं कहते? अपने स्वास्थ्य के सम्बन्ध में आज अधिकांश व्यक्तियों की स्थिति लगभग ऐसी ही है। उपचार स्वयं के पास है और ढूँढ़ते हैं दवा में और डा ॅक्टर के पास। जिस प्रकार स्विच चालू करने जैसी सरल प्रक्रिया भी जो सीखना न चाहे अथवा दूसरों पर निर्भर रहे उस व्यक्ति को कभी-कभी बिजली की उपलब्धता होने के बावजूद भी अंधेरे में रहना पड़ सकता है। अधिकांश स्वावलम्बी चिकित्सा पद्धतियों में चन्द आपातकालीन विशेष परिस्थितियों के अलावा उपचार हेतु अन्य सहयोगियों पर निर्भर रहने की आवश्यकता नहीं होती। स्वयं द्वारा स्वयं का उपचार करने से व्यक्ति की सजगता बनी रहती है और जैसे-जैसे रोग में राहत मिलती है, रोगी का आत्मविश्वास बढ़ता जाता है। उपचार करते समय दुष्प्रभावों की संभावना प्रायः नहीं रहती। अतः जो उपचार हम आसानी से सीखकर कर सकते हैं, उतना उपचार तो स्वयं ही करना चाहिए। दूसरों पर निर्भर रहने से प्रायः उपचार पूर्ण नहीं होता तथा उपचार की अवधि भी बढ़ जाती है। साथ ही उपचार की प्रभावषीलता भी कम हो जाती है। दूसरों पर उपचार हेतु निर्भर रहने से समयाभाव की स्थिति के कारण उपचार में नियमितता एवं निरन्तरता भी प्रभावित हो सकती है।

जैसे वर्तमान में दूसरों का उपचार करने वाले अधिकांश एक्युप्रेशर चिकित्सक भी अपने सिद्धान्तों के अनुसार न तो रोगों का निदान ही करते हैं और न उपचार। आधुनिक चिकित्सा के निदान को आधार मानकर ही प्रायः नामधारी रोगों का उपचार करते हैं। सहयोगी रोगों की उपेक्षा करने से उपचार अस्थायी और आंशिक प्रभावशाली ही होता है साथ ही समय भी अधिक लेता है, जबकि हथेली और पगथली में सभी दर्दस्थ प्रतिवेदन बिन्दुओं पर उपचार करने से सारे शरीर, मन और मस्तिश्क के विकारों को जल्दी दूर किया जा सकता है और उपचार से असाध्य एवं संक्रामक रोग जल्दी ठीक हो सकते हैं।

ठीक उसी प्रकार वास्तव में एक्युप्रेशर उपचार और निदान भी व्यक्ति को स्वयं ही करना चाहिये। दूसरे व्यक्ति से एक्युप्रेशर करवाने से उपचार का शत-प्रतिशत लाभ नहीं मिलता। उपचार लम्बा, अस्थायी एवं कम प्रभावशाली होता है। अतः यथा संभव

जितना उपचार रोगी स्वयं कर सके, उतना तो कम से कम उसको स्वयं ही करना चाहिए तथा चिकित्सक का रोग से संबंधित प्रमुख प्रतिवेदन के दबाव हेतु शीघ्र राहत मिलने तक, ही सहयोग लेना चाहिए। किसी भी चिकित्सक के पास इतना समय नहीं होता कि रोगी के सभी प्रतिवेदन बिन्दुओं का ढंग से निदान कर सके। वे तो मात्र मुख्य प्रतिवेदन बिन्दुओं तक ही अपना ध्यान केन्द्रित रखते हैं एवं उपचार आंशिक ही कर सकते हैं।

प्रारम्भ में जो प्रतिवेदन गहरे और मुख्य होते हैं, उनके उपचार हेतु किसी अच्छे थेरेपिस्ट का मार्गदर्शन एवं सहायता ली जा सकती है, परन्तु बाकी पगथली और हथेली के सभी प्रतिवेदन बिन्दुओं का निदान और उपचार तो स्वयं ही करना चाहिये। आज सैंकड़ों रोगी हमारे मार्गदर्शन में स्वयं उपचार कर देश भर में स्वस्थ हो रहे हैं। आवश्यकता है रोगी में उसकी क्षमताओं के प्रति आत्म-विश्वास पैदा कर एवं आधुनिक चिकित्सा पद्धति के दुष्प्रभावों के प्रति सजगता पैदा करने की।

स्वावलम्बी उपचार के प्रति मेरा आकर्षण कैसे हुआ?

व्यावहारिक शिक्षा से बिजली का इंजीनियर एवं बिजली व्यवसाय से जुड़ा होने के बावजूद चंद घटनाओं के कारण स्वावलम्बी चिकित्सा पद्धतियों की ओर मेरा झुकाव हुआ। वर्ष 1988 में 85 वर्ष की आयु में मेरी माताजी को पक्षाघात हुआ। मद्रास के वरिष्ठ चिकित्सकों द्वारा उनके जीवन की आशा समाप्त हो चुकी थी। चिकित्सक द्वारा निदान एवं उपचार पर मुझे मेरी शंकाओं का संतोषप्रद समाधान नहीं मिला। प्रभु के आशीर्वाद से चुम्बक एवं एक्युप्रेशर में मेरी सामान्य जानकारी के आधार पर किए गए उपचार से माताजी के स्वास्थ्य में न केवल चमत्कारी प्रभाव ही पड़ा, अपितु उनको ढाई वर्ष से अधिक का जीवन मिला।

सितम्बर 1990 में एक ट्रक दुर्घटना में मेरे चेहरे की हड्डियों का फ्रेक्चर हो गया। अहमदाबाद में शल्य चिकित्सा के पश्चात् 26 टांके आए। तीन दिन पश्चात् शल्य चिकित्सक ने 45 दिन तक दवाइयें लेने के पश्चात् टांके खुलवाने हेतु पुनः सम्पर्क करने की बात कही। चिकित्सक द्वारा उपचार हेतु ली जाने वाली दवाओं की प्रासंगिकता के बारे में संतोषप्रद शंका समाधान न होने से मैंने दवा लेना उचित नहीं समझा एवं चुम्बक चिकित्सा की सामान्य जानकारी के आधार पर अपने आपको बिना दवा, चन्द दिनों में प्रभु कृपा से रोगमुक्त कर लिया।

अप्रेल 1991 में एक अन्य दुर्घटना में मेरे जांघ की हड्डी में 2 इंच की क्रेक आ गई, जिसको मैंने मात्र 5-7 दिनों में ही अपने उपचारों से ठीक कर लिया। वर्ष 2001 में मुझे हृदयघात के कारण पाँच दिन प्दजमेपअम बंतम न्दपज ;प्ब्न्द्ध में रहना पड़ा, परन्तु वहाँ भी मैंने अनावश्यक दवाओं का सेवन नहीं किया और अस्पताल से छुट्टी के पश्चात् किसी प्रकार की दवा लिए बिना अपना उपचार स्वयं किया तथा चंद सप्ताह पश्चात् पालीताणा तीर्थ की लगभग 3500 सीढ़ियाँ चढ़कर पैदल यात्रा की। अधिक जानकारी हेतु लेखक की पुस्तक ''आरोग्य आपका'' में 'बिना दवा हृदय रोगों का प्रभावषाली उपचार' का अध्ययन करें। वर्ष 2006 में मेरे बांयें कान के पर्दे में छिद्र हो गया। चिकित्सकों द्वारा उपचार हेतु विभिन्न दवाइयों का कम से कम 15 दिन उपचार लेने का परामर्श दिया। परन्तु नाक में शिवाम्बु तथा कान पर नीले बल्ब की रोशनी के उपचार से मैं मात्र दो दिनों में रोग मुक्त हो गया।

वर्ष 2012 में मोतियाबिन्द **(Cataract)** के कारण मैंने अपनी दोनों आंखों में लैंस लगवाए। उसके पश्चात् प्रातः उदित सूर्य को निहारने एवं आंखों में शिवाम्बु के प्रयोग से शल्य चिकित्सा के दो-तीन दिनों के पश्चात् आंखों में नियमित दवा डालने की आवश्यकता नहीं पड़ी एवं इस वृद्धावस्था में मुझे 55 वर्षो के पश्चात् चश्मे से मुक्ति मिली।

'आरोग्य आपका' पर खुली किताब परीक्षा का आयोजन

वर्ष 2004-05 में मैंने अपनी स्वलिखित पुस्तक ''आरोग्य आपका' पर आधारित लाखों रुपयों के प्रोत्साहन पुरस्कारों के साथ राष्ट्रीय स्तर पर खुली किताब परीक्षा का आयोजन किया। सम्पूर्ण राष्ट्र में स्वास्थ्य के क्षेत्र में यह प्रथम प्रयास था। इस प्रतियोगिता में सभी स्तर के बुद्धिजीवियों ने भाग लिया। सभी प्रतियोगियों ने पुस्तक का मनोयोग पूर्वक अध्ययन कर मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की एवं साथ ही पुस्तक के माध्यम से अनेक प्रतियोगियों ने स्वयं और परिजनों का सफल उपचार भी किया। जो हमारी वेबसाइट पर उपलब्ध है।

स्वावलम्बी चिकित्सा पद्धतियाँ अत्यधिक प्रभावशाली

गत 25 वर्ष से अधिक स्वावलम्बी चिकित्सा पद्धतियों के क्षेत्र में कार्य करने एवं उनसे प्राप्त अनुभवों के पश्चात् आज मैं दृढ़तापूर्वक कह सकता हूँ कि स्वावलम्बी उपचार वर्तमान में उपलब्ध अन्य उपचारों से अधिक प्रभावशाली होते हैं।

1. एक्युप्रेशर निदान, उपचार एवं रोगों की रोकथाम की बहुत ही सरल, सस्ती, स्वावलम्बी, प्रभावशाली, अहिंसक, वैज्ञानिक पद्धति है। इस पद्धति द्वारा अन्तःस्रावी ग्रन्थियों का जितना सरल, सहज, प्रभावशाली उपचार हो सकता है, उतना अन्य चिकित्सा पद्धतियों में प्रायः संभव नहीं होता।
2. चुम्बक चिकित्सा शरीर से पीड़ा दूर करने, घावों को शीघ्रता से भरने, रक्त संचार ठीक रखने एवं हड्डियों को जोड़ने में अन्य चिकित्सा पद्धतियों से अधिक प्रभावशाली होती है।
3. शिवाम्बु तो स्वास्थ्य का अमूल्य खजाना है। शिवाम्बु घर का दवाखाना है, जहाँ प्रायः सभी रोगों की दवा उपलब्ध होती है। शिवाम्बु घर का अस्पताल है जहाँ अधिकांश रोगों का प्रभावशाली उपचार होता है। शिवाम्बु घर का डाॅक्टर है, क्योंकि उसमें रोग के अनुसार दवा का परामर्श देने का चिकित्सकीय गुण होता है। घर में ही रोग निदान केन्द्र है, क्योंकि शिवाम्बु उपचार करते समय रोग के निदान हेतु परीक्षणों की आवश्यकता नहीं होती। शिवाम्बु स्वयं द्वारा स्वयं के स्वास्थ्य का सुरक्षा कवच है, क्योंकि शिवाम्बु के सेवन से वायरस प्रभावहीन हो जाते हैं। वृद्धावस्था के लक्षण समय के पूर्व प्रकट नहीं होते। बच्चों को रोग निरोधक टीके लगाने की आवश्यकता नहीं होती।
4. आकस्मिक रोगों में स्वर परिवर्तन कर तुरन्त राहत पायी जा सकती है।
5. मुस्कान एवं हास्य चिकित्सा तनाव, भय, आवेग, अधीरता जैसे मानसिक एवं हारमोन सम्बन्धी रोगों में रामबाण की तरह कार्य करती है।
6. दाणा मैथी के स्पर्श मात्र से शरीर में जमे विजातीय पदार्थो को दूर कर रोग में शीघ्रता से आराम पाया जा सकता है।
7. सूर्यमुखी तेल गंडूस द्वारा सरलता से रक्त शुद्धिकरण किया जाता है एवं रक्त सम्बन्धी रोगों में राहत पायी जा सकती है।
8. नाभि को केन्द्र में लाने मात्र से पाचन सम्बन्धी रोगों को तुरन्त ठीक किया जा सकता है।
9. पैरों एवं मेरुदण्ड को संतुलित रखने मात्र से जोड़ों के दर्द में राहत पायी जा सकती है।
10. सुजोक बियोल मेरेडियन द्वारा सभी अंगों में प्राण ऊर्जा को संतुलित कर असाध्य रोगों में शीघ्र राहत पायी जा सकती है एवं शल्य चिकित्सा से भी बचा जा सकता है।
11. सूर्य किरण एवं रंग चिकित्सा तथा मुद्रा चिकित्सा के भी विभिन्न रोगों में चमत्कारिक परिणाम प्राप्त हो रहे हैं। यदि ऐसी विभिन्न स्वावलम्बी चिकित्सा पद्धतियों का समन्वय कर उपचार किया जाए तो उपचार के तुरन्त परिणाम आते है।

हमारे ट्रस्ट द्वारा स्वावलम्बी चिकित्सा पद्धतियों के प्रति जनसाधारण में आत्मविश्वास पैदा करने हेतु 30 से अधिक पुस्तकों का प्रकाशन हो चुका है। बाजार में उपलब्ध अधिकांश स्वास्थ्य संबंधी पुस्तकों का प्रकाशन पाठकों की रुचि को ध्यान में रखकर किया जाता है। स्वास्थ्य के लिए क्या आवश्यक एवं प्राथमिक है, यह प्रायः गौण होता है। हमारे ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित पुस्तकें बाजार में उपलब्ध चिकित्सकों के दृष्टिकोण से हट कर लिखी गई है एवं उपर्युक्त अपवाद की श्रेणी में न आने वाली पुस्तकें हैं। सभी पुस्तकें हमारी Website: chordiahealthzone.in पर उपलब्ध है। ''आरोग्य आपका'', ''स्वस्थ रहें या रोगी: फैसला आपका'', ''शरीर स्वयं का चिकित्सक'', ''आपका आरोग्य आपके पास'', ''आपका उपचार आपके पास'', ''स्वास्थ्य का अमूल्य खजाना: मानव मूत्र'', ''निर्दोष श्रमणोपचार'' जैसी पुस्तकें पढ़ने से आप अपनी क्षमताओं से परिचित होगें एवं स्वयं प्रभावशाली ढंग से स्वस्थ जीवन यापन कर सकेंगे। रोग होने की स्थिति में स्वालम्बी चिकित्सा द्वारा शीघ्र रोग मुक्त हो सकेंगे।

हमारा स्वास्थ्य हमारे हाथ में है तो हमारे रोग भी हमारे हाथ में है। हम जैसा चाहें वैसा आचरण करें, हमें स्वयं को यह फैसला करना है कि हम रोगी बनें या स्वस्थ। सबका मंगल हो, सबका कल्याण हो, सभी शांत, प्रसन्न, स्वस्थ एवं रोग मुक्त हों।

इसी मंगल भावना के साथ.......।

-डाॅ. चंचलमल चोरडिया

मानव जीवन अमूल्य

मानव जीवन अमूल्य है। वस्तु जितनी मूल्यवान होती है, उसका उपयोग एवं उसकी सुरक्षा उसके अनुरूप करने वाला ही सच्चा ज्ञानी होता है। हमें चिन्तन करना होगा कि मानव जीवन के रूप में प्राप्त हम अपनी ऐसी अमूल्य क्षमताओं का अप्राथमिक, अनावश्यक कार्यों में दुरुपयोग और अपव्यय तो नहीं कर रहे हैं? जब तक अपनी क्षमताओं का सही उपयोग नहीं होगा, दुःख और रोग के कारणों को नहीं समझा जायेगा, तब तक हमाराजीवन अमर्यादित, अनियन्त्रित, लक्ष्य-हीन, स्वच्छन्द, असंयमित होने से स्थायी स्वास्थ्य एवं समाधि को प्राप्त नहीं कर सकता।

स्वास्थ्य का महत्त्व

स्वस्थ जीवन मानव की सर्वोच्च्य आवश्यकता है। अच्छे स्वास्थ्य के बिना मानव न तो शान्त, सुखी, आनन्दित जीवन-यापन कर सकता है और न ही अपने लक्ष्यों की पूर्ति आसानी से कर सकता है। अस्वस्थ शरीर सुखी जीवन को दुःखी बना सकता है, इसी कारण तो कहावत प्रचलित है- ''पहला सुख नीरोगी काया।'' स्वास्थ्य जो तन, मन और आत्मा के एक सन्तुलित, अनुशासित, समन्वय का प्रतीक है, कोई ऐसी वस्तु नहीं जिसे बाजार से खरीदा जा सके अथवा उधार लिया जा सके या चुराया जा सके। ये सारी बातें जानते, मानते और समझते हुए भी आज का मानव कितना स्वस्थ एवं सुखी है, प्रायः किसी से अज्ञात नहीं है। प्रत्येक मानव दीर्घायु बन आजीवन स्वस्थ रहना चाहता है। यदि हमें स्वस्थ रहना है तो रोग पैदा करने वाले कारणों से अपने आपको दूर रखना होगा।

सुखी जीवन के लिए स्वयं की क्षमताओं का सदुपयोग आवश्यक

प्रत्येक व्यक्ति जीवन पर्यन्त स्वस्थ एवं सुखी रहना चाहता है। स्वस्थ रहना आत्मा का स्वभाव है। कोई भी रोगी बनना नहीं चाहता। परन्तु चाहने मात्र से तो स्वास्थ्य, शान्ति और समाधि नहीं मिल सकती।

सुखी जीवन के लिए सिर्फ शरीर का होना ही काफी नहीं होता, अपितु शरीर का स्वस्थ, नीरोग और ऊर्जायुक्त होना भी आवश्यक है। अनेक व्यक्ति बाह्य रूप से बलिष्ठ, पहलवान जैसे दिखने के बावजूद कभी-कभी असाध्य रोगों से पीड़ित पाए जाते हैं, जबकि इसके विपरीत कभी-कभी बाह्य दृष्टि से दुबले-पतले दिखने वाले कुछ व्यक्ति मोटे-ताजे दिखने वाले व्यक्तियों की अपेक्षा ज्यादा मनोबली, आत्मबली और स्वस्थ हो सकते हैं। अतः स्वस्थ रहने की कामना रखने वालों को अपनी जीवनचर्या का निर्वाह करते समय अपनी क्षमताओं का सजगता, स्वविवेक, संयम और संतुलन के साथ सम्यक् पालन करना चाहिए।

स्वस्थ रहने के लिए यह जानना आवश्यक है कि स्वास्थ्य क्या है? स्वस्थ कौन होता है? रोग क्या है? रोग क्यों, कब और किसे होता है? हमें उन सभी कारणों को जानना और समझना आवश्यक है जो प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से हमारा स्वास्थ्य बिगाड़ने में सहायक बनते हैं। हमारी रोग प्रतिरोधक क्षमता घटाते हैं। शरीर, मन और आत्मा के विकारों को बढ़ाते हैं। उनका आपसी सन्तुलन बिगाड़ते हैं। स्वस्थ रहना भी एक कला है, एक विज्ञान है, एक दृष्टि, सोच अथवा चिन्तन का प्रतिफल है जिसके लिए विवेकपूर्ण उचित ज्ञान, साधन और सम्यक् पुरुषार्थ अनिवार्य है। प्राप्त क्षमताओं का अधिकाधिक प्राथमिकता के आधार पर उपयोग कर तथा स्वास्थ्य को प्रभावित करने वाले विकारों से अपने आपको बचाकर ही हम स्वस्थ जीवन जी सकते हैं। एक तरफ तो हम चिकित्सा करें और दूसरी तरफ असंयम में रहें, इन्द्रियों में आसक्त बने रहें, तो स्वास्थ्य कैसे प्राप्त होगा? जीवन के साथ मृत्यु निश्चित है। जन्म के साथ आयुष्य के रूप में श्वास यानी प्राण ऊर्जा का जो खजाना लेकर हम जन्म लेते हैं, वह धीरे-धीरे क्षीण होता जाता है। जीवन के अंतिम क्षणों तक प्राण ऊर्जा के प्रवाह को संतुलित, नियन्त्रित एवं सही संचालित करके तथा उसका सही उपयोग करके ही हम शान्त, सुखी और स्वस्थ जीवन जी सकते हैं।

स्वास्थ्य की उपयोगिता का आभास रोगावस्था में

किसी वस्तु का मूल्य उसका अभाव होने पर ही पता लगता है। वस्तु का मूल्य समझे बिना उसका सदुपयोग बराबर नहीं किया जा सकता। ठीक उसी प्रकार स्वस्थ शरीर के महत्त्व का पता भी स्वास्थ्य के नष्ट हो जाने अथवा वृद्धावस्था आ जाने पर ही लगता है। संसार के सभी दुःखों का कारण अज्ञान है। इसी प्रकार सभी रोगों का कारण स्वास्थ्य सम्बन्धी नियमों का पूर्ण और सही ज्ञान न होना तथा उनका उल्लंघन करना है। प्रकृति किसी भी ज्ञानी अथवा अज्ञानी की गलती को कभी क्षमा नहीं करती।

प्रायः वृद्धावस्था में तो स्वास्थ्य का महत्त्व प्रत्येक मानव को अनुभव होता ही है क्योंकि, जवानी कभी लौट कर नहीं आती और बुढ़ापा कभी लौट कर नहीं जाता।

मानव जीवन का उद्देष्य

मानव जीवन का उद्देश्य क्या है? खाना-पीना, मौज-शौक करना, सो जाना और दूसरे दिन प्रातः उठकर पुनः उन्हीं कार्यो में लग जाना। यह सभी कार्य तो पशु भी करते हैं। ऐसे जीवन जीने वाले मनुश्य और पशु में क्या अन्तर? मानव में चेतना का सर्वाधिक विकास होने के कारण एक विशेशता होती है कि वह जानता भी है और समझता भी है कि वह क्या कर रहा है? क्यों कर रहा है? क्या करना चाहिए और क्या नहीं करना चाहिए? मानव में ही चिन्तन, मनन की अपूर्व क्षमता, बुद्धि तथा विवेक होता है। जिससे भूतकाल की भूलों का सुधार और भविश्य के सुखद जीवन की कल्पना एवं सम्यक् पुरुशार्थ कर सकता है। अतः मानव से ही अपनी क्षमताओं के अनुरूप सही उद्देश्य एवं लक्ष्य के प्रति आगे बढ़ने की अपेक्षा रखी जा सकती है।

जीवन में स्वास्थ्य को प्राथमिकता क्यों आवश्यक?

मानव के सारे क्रियाकलाप शरीर के आश्रित होते हैं तथा शरीर के अस्तित्व में आने पर ही प्रारम्भ होते हैं और उसके निष्प्राण होते ही समाप्त हो जाते हैं। तभी तो उपनिषदों में कहा गया- "शरीर माद्यं खलु धर्म साधनम्। " मानव की जीवन यात्रा इस शरीर रूपी वाहन द्वारा ही सम्पन्न होती है। यदि वह वाहन अच्छा और शक्तिशाली होगा तथा जीवन यात्रा के दौरान इसकी उचित देखभाल की जाती रहेगी एवं क्षमता से ज्यादा भार डाल कर इसका दुरुपयोग नहीं किया जाएगा तो यह अपनी यात्रा निश्चित अवधि तक निर्विध्न रूप से पूर्ण करेगा और इसमें यात्रा करने वाला मानव अधिक सुखद व लम्बी यात्रा कर सकेगा, अन्यथा एक खटारा गाड़ी में बैठकर दुःखद व बाधापूर्ण यात्रा करनी पड़ेगी और बीच राह में ही गाड़ी के खराब हो जाने से आगे की यात्रा के लिए असमय ही नया शरीर रूपी वाहन खोजना पड़ जाएगा।

स्वास्थ्य हेतु प्राकृतिक नियमों का पालन अनिवार्य

एक साधारण से यंत्र, वाहन अथवा कम्प्यूटर जैसे उपकरण से भी उचित व निर्विध्न सेवा प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक है कि उसके निर्माता द्वारा बतलाई हुई संचालन नियमावली (Operating Instruction) के अनुसार ही उसे चलाया जाए। नियमित उचित सफाई द्वारा उसे खराब होने से बचाया जावे तथा उसमें वे ही तरल पदार्थ (Lubricant) डाले जाएँ जो उस उपकरण की कार्य क्षमता में अवरोधक न बन उसे सुचारू रूप से चलाने में सहायक हों। तब क्या इस दुनिया की सर्वोत्तम मानव शरीर रूपी मशीन से पूर्णकाल तक निर्विध्न सेवा प्राप्त करने के लिए, इसकी नियमानुसार देखभाल करना आवश्यक नहीं है, ऐसा कैसे सम्भव हो सकता है? जैसे नियमित सर्विस, उत्तम श्रेणी का तेल व जल उचित मात्रा में प्रयोग करने व उसकी ट्यूनिंग भंग नहीं होने देने से कोई भी वाहन उत्तम सेवा देता है, वैसे ही उचित आहार-विहार, आचार-विचार, रहन-सहन एवं प्रकृति के साथ तालमेल रखने से यह शरीर भी स्वस्थ रहता है तथा अपनी पूर्ण अवधि तक निर्विध्न सेवा प्रदान करता है। अतः शरीर की गर्भकाल से ही उचित देखभाल करनी चाहिए।

स्वास्थ्य के प्रति स्वयं की सजगता आवश्यक

शरीर, मन और आत्मा के बारे में अधिकांश व्यक्तियों को जानने, सोचने, समझने की जिज्ञासा ही नहीं होती। स्वास्थ्य के बारे में हमारी सोच पूर्णतया सही नहीं होती। क्या गलत? क्या सही? क्या उचित? क्या अनुचित? क्या प्राथमिक, अति आवश्यक? क्या साधारण, क्या करणीय? क्या अकरणीय? प्रत्येक तथ्य का कारण एवं मूल क्या? क्यों? कब? कितना जानने का प्रयास करें, समस्या अथवा रोग का पता लग जाएगा। शरीर क्या स्वीकार करता है और क्या नहीं, समझ में आ जाएगा।

अधिकांश रोग प्रायः स्वयं की गलतियों, उपेक्षावृत्ति से उत्पन्न होते हैं। अतः उपचार में स्वयं की सजगता और सम्यक् पुरुशार्थ आवश्यक है। जब तक रोगी रोग के कारणों से नहीं बचेगा, उसकी गम्भीरता को नहीं स्वीकारेगा तब तक पूर्ण स्वस्थ कैसे हो सकेगा? रोग प्रकट होने से पूर्व अनेक बार अलग-अलग ढंग से चेतावनी देता है। परन्तु रोगी उस तरफ ध्यान ही नहीं देता। इसी कारण उपचार एवं परहेज के बावजूद चिकित्सा लम्बी, अस्थायी, दुश्प्रभावों वाली हो तो भी आश्चर्य नहीं? अतः रोग होने की

स्थिति में रोगी को स्वयं से पूछना चाहिये कि उसको रोग क्यों हुआ? रोग कैसे हुआ? कब ध्यान में आया? रोग से उसकी विभिन्न, शारीरिक प्रक्रियाओं तथा स्वभाव में क्या परिवर्तन हो रहे हैं? इस बात की जितनी सूक्ष्म जानकारी रोगी को हो सकती है, उतनी अन्य को नहीं।

स्वस्थ रहना स्वयं के हाथ

क्या स्वयं के अज्ञान, अविवेक, असजगता के कारण तथा हमारी असंयमित, असंतुलित और अप्राकृतिक जीवन शैली से तो रोग पैदा नहीं होते हैं? उनकी उपेक्षा कर दीर्घकाल तक पूर्ण स्वस्थ रहने की हमारी कल्पना, क्या आग लगाकर ठण्डक प्राप्त करने जैसी मूर्खतापूर्ण तो नहीं है? क्या हमारी श्वास अन्य व्यक्ति ले सकता है? क्या हमारा निगला हुआ भोजन दूसरा व्यक्ति पचा सकता है? क्या हमारी प्यास किसी अन्य व्यक्ति के पानी पीने से शान्त हो सकती है? क्या हमारा दर्द, पीड़ा, वेदना हमारे परिजन ले सकते हैं? प्रायः रोग के प्रमुख कारण रोगी की स्वयं की असावधानी से पैदा होते हैं। अपनी स्थिति से जितना हम स्वयं परिचित होते हंै, दूसरा उतना परिचित हो नहीं सकता। यंत्र और रासायनिक परीक्षण तो मात्र शरीर में होने वाले भौतिक परिवर्तनों को बतलाने में तनिक सहायता कर सकते हैं। आसपास का प्रदूषित वातावरण, पर्यावरण, अशुद्ध भोजन सामग्री, अषुद्ध पानी और प्रदुशित वायु रोगों का कारण हो सकते हैं। परन्तु शरीर की प्रतिरोधक क्षमता ठीक हो तो बाह्य कारण अकेले व्यक्ति को रोगग्रस्त नहीं बना सकते। जब रोग व्यक्ति के स्वयं की गलतियों से ज्यादातर पैदा होता है तो स्वास्थ्य को बनाए रखने तथा रोग होने पर उसके उपचार में रोगी की सजगता, भागीदारी, सम्यक् चिन्तन और सम्यक् पुरुषार्थ का सर्वाधिक महत्त्व होता है।।

स्वास्थ्य के लिए स्वयं का संयम और सम्यक् पुरुषार्थ आवश्यक

रोग होने के कारणों को मुख्य रूप से दो भागों में विभाजित किया जा सकता है। प्रथम तो स्वयं से सम्बन्धित और दूसरा अन्य बाह्य वातावरण अथवा परिस्थितियों से संबंधित। जो रोग स्वयं से सम्बन्धित होता है, उसका उपचार तो स्वयं के द्वारा ही सम्भव होता है। परावलम्बन बन्धन है, फिर वह चाहे डा़ॅक्टर का हो या दवा का। स्वयं के द्वारा स्वयं की चिकित्सा करने की विधि को ही स्वावलम्बी चिकित्सा कहते हैं। अतः व्यक्ति के स्वयं पर निर्भर करता है कि वह रोग-ग्रस्त जीवन जीना चाहता है या स्वस्थ जीवन। चाहने मात्र से तो स्वास्थ्य नहीं मिलता अपितु स्वस्थ जीवन जीने के लिए सजगता, नियमितता, सम्यक् पुरुषार्थ आवश्यक होता है।

अतः जो चिकित्सा पद्धतियाँ व्यक्ति को जितना-जितना स्वावलम्बी बनाने में सक्षम होती हैं, वे उतनी ही अधिक उपयोगी एवं प्रभावशाली होती हैं तथा उनका उपचार स्थायी और दुष्प्रभावों से रहित होता है। आज सबसे बड़ी समस्या अपने आप पर अनास्था की है। अपनी क्षमताओं से अनभिज्ञता की है। हमारे चिन्तन एवं सोच का समस्त आधार भीड़, विज्ञापन, अन्धानुकरण, बाह्य वातावरण होता है, न कि स्वविवेक और सम्यक् चिन्तन।

आरोग्य एवं निरोगता में अन्तर

नीरोग का मतलब शरीर में रोग उत्पन्न ही न हों, जबकि आरोग्य का मतलब शरीर में रोगों की उपस्थिति होते हुए भी हमें उनकी पीड़ा और दुष्प्रभावों का अनुभव न हो। आज हमारा सारा प्रयास, प्रायः आरोग्य रहने तक ही सीमित होता है। आज हम मात्र शारीरिक रोगों को ही रोग मान रहे हैं। आत्मिक रोग, शारीरिक और मानसिक रोगों से ज्यादा खतरनाक होते हैं, जो हमें जन्म-मरण एवं विभिन्न योनियों में भटकाते हैं। शारीरिक रूप से भी नीरोग बनना प्रायः असम्भव लगता है। रोग चाहे शारीरिक हो, चाहे मानसिक अथवा आत्मिक, उसका प्रभाव तो शरीर पर ही होगा। अभिव्यक्ति तो शरीर के माध्यम से ही होगी, क्योंकि आत्मा तो अरूपी है और मन को भी हम अपने चर्म चक्षुओं द्वारा देखने में असमर्थ हैं। मुख्य रूप से रोग आधि (मानसिक), व्याधि (शारीरिक), उपाधि (कर्म-जन्य) के रूप में ही प्रकट होते हैं। अतः आधि, व्याधि और उपाधि का शमन करने से ही समाधि, स्वस्थता एवं परमशान्ति अर्थात् नीरोग अवस्था की प्राप्ति हो सकती है।

शारीरिक दृष्टि से नीरोग रहने के लिए आवश्यक है कि यथा-सम्भव प्राकृतिक नियमों का पालन किया जाए। शुद्ध हवा, शुद्ध पानी, शुद्ध सात्विक एवं पौष्टिक आहार उचित मात्रा में आवश्यकतानुसार पाचन के नियमानुसार उचित समय ग्रहण किया जाए। नियमित धूप का सेवन, व्यायाम, आराम, निद्रा का ध्यान रखा जाए। नियमित स्वाध्याय, ध्यान, मौन, उपवास, इन्द्रिय संयम तथा

प्राणायाम किया जाए एवं तनाव के कारणों से यथासम्भव बचा जाए। शारीरिक क्षमता के अनुरूप ही श्रम किया जाए तथा मल और मूत्र आदि शरीर के विकारों का विसर्जन करने वाली प्रक्रियाओं को न रोका जाए। इन नियमों की उपेक्षा कर अपने आपको नीरोग रखने की कल्पना आग लगाकर ठण्डक प्राप्त करने के समान होगी। जैसे - "फूटे घड़े को सात समुद्रों का पानी भी भरा हुआ नहीं रख सकता।" ठीक उसी प्रकार रोग के कारणों से बच कर अथवा दूर किए बिना कोई भी चिकित्सा पद्धति मानव शरीर को भी पूर्णरूपेण नीरोग नहीं रख सकती।

मानव शरीर की विशेषताएँ

मानव जीवन की संरचना विश्व का एक अद्भूत आश्चर्य है। उसके रहस्य को दुनियाँ का बड़े से बड़ा डा ॅक्टर और वैज्ञानिक पूर्ण रूप से समझने में अभी तक असमर्थ है। मस्तिष्क जैसा सुपर कम्प्यूटर, हृदय एवं गुर्दे जैसा रक्त शुद्धिकरण यंत्र, आमाशय, तिल्ली, लीवर जैसा रासायनिक कारखाना, आँख के समान कैमरा, कान के समान श्रवण यंत्र, जीभ के समान वाणी एवं स्वाद यंत्र, लिम्फ प्रणाली जैसी नगर निगम के समान सफाई व्यवस्था, नाड़ी तंत्र के समान मीलों लम्बी संचार व्यवस्था, अन्तःस्रावी ग्रन्थियों के समान सन्तुलित, नियंत्रित, संयमित, न्यायिक, प्रशासनिक व्यवस्था, अवांछित तत्त्वों के विसर्जन की व्यवस्था, प्रकाश से भी तेज गति वाला मन इत्यादि अन्यत्र निर्मित उपकरणों अथवा अन्य चेतनाशील प्राणियों में एक साथ मिलना असम्भव होता है। शरीर के ऊपर त्वचा न होती तो कैसी स्थिति होती? क्या हमने कभी कल्पना की?

शरीर अपने लिए आवश्यक रक्त, मांस, मज्जा, हड्डिया ॅ, वीर्य आदि तत्त्वों का निर्माण चेतना के सहयोग से स्वयं करता है, जिसे अन्यत्र प्रयोगशालाओं में बनाना अभी तक सम्भव नहीं हुआ है। हमारे शरीर में पसीने द्वारा त्वचा के छिद्रों से पानी तो आसानी से बाहर आ सकता है, परन्तु पानी में त्वचा को रखने से, उन छिद्रों से पानी भीतर नहीं जा सकता। प्रत्येक शरीर का कुछ न कुछ वजन होता है, परन्तु चलते-फिरते शायद ही किसी को अपना वजन अनुभव होता है। हमारे शरीर का तापक्रम साधारणतयाः 98.4 डिग्री फारेहनाइट होता है, भले ही बाहर कितनी ही सर्दी अथवा गर्मी क्यों न हों। चाहे बर्फीले दक्षिणि अथवा उत्तरी ध्रुव पर जावें अथवा गर्मी में सहारा मरूस्थल जैसे गर्म स्थानों पर, शरीर का तापक्रम 98.4 डिग्री फारेहनाइट ही रहता है। हम देखते हैं कि जब कभी आँधी या तेज हवाएँ चलती हैं, तब हल्के पदार्थ एक स्थान से दूसरे स्थान पर उड़कर चले जाते हैं। परन्तु हलन-चलन, उठने-बैठने एवं दौड़ने के बावजूद शरीर की कोई भी नाड़ी अपना स्थान नहीं छोड़ती। यदि हम शीर्षासन करें तो हृदय अपना स्थान नहीं छोड़ता। शरीर के सभी अंग, उपांग, नाड़ियाँ, हड्डियाँ, हलन-चलन के बावजूद कैसे अपने स्थान पर स्थिर रहते हैं? वास्तव में क्या यह आश्चर्य नहीं है?

शारीरिक क्षमताओं का दुरुपयोग अनुचित

यदि कोई लाखों रुपये के बदले किसी व्यक्ति के शरीर का कोई अंग, उपांग अथवा इन्द्रियाँ आदि लेना चाहे तो यथा-सम्भव कोई व्यक्ति नहीं देना चाहेगा। क्योंकि पैसां े से उन अंगों को पुनः प्राप्त नहीं किया जा सकता। यहाँ तक लाखों रुपयों के बदले यदि आपको 15 मिनट श्वास रोकने का आग्रह करें तो क्या आप ऐसा करना चाहेंगे? नहीं! कदापि नहीं। मृत्यु के पश्चात् उस पैसे का क्या उपयोग? क्या हमने कभी सोचा कि ऐसी अमूल्य श्वास से जो हमें प्रतिक्षण निःशुल्क मिल रही है, उसे हम बराबर तो ले रहे हैं अथवा नहीं? इतने अमूल्य मानव जीवन का उपयोग हम कैसे कर रहे हैं? यदि कोई रुपयों के नोटों के बण्डल को चाय बनाने के लिए ईधन के लिए जलाएँ तो हम उसे मूर्ख अथवा पागल कहते हैं। तब इस अमूल्य मानव जीवन की क्षमताओं का दुरुपयोग अथवा अपव्यय करने वालों को क्या कहा जाए? बुद्धिमान व्यक्ति के लिए चिन्तन का प्रश्न है? कहीं हमारा आचरण अज्ञानवष अरबपति बाप के भिखारी पुत्र के समान स्वास्थ्य की दर-दर भीख मांगने जैसा तो नहीं है?

शरीर में रोग प्रतिरोधक क्षमता होती है

प्रत्येक अच्छे स्वचलित यंत्र में खतरा उपस्थित होने पर स्वतः उसको ठीक करने की व्यवस्था प्रायः होती है। जैसे बिजली के उपकरणों की सुरक्षा हेतु ओवरलोड, शार्ट सर्किट, अर्थ फाल्ट रिले, फ्यूज आदि। प्रत्येक वाहन में ब्रेक होता है ताकि आवश्यकता पड़ने पर वाहन की गति को नियंत्रित किया जा सके। ठीक उसी प्रकार मनुष्य का शरीर जो दुनियाँ की सर्वश्रेष्ठ स्वचलित, स्वनियंत्रित मशीन जैसा है, उसमें रोगों से बचने की सुरक्षात्मक व्यवस्था न हो तथा रोग होने की अवस्था में पुनः

स्वस्थ बनाने की व्यवस्था न हो, कैसे सम्भव हो सकता है? आवश्यकता है, हमें स्वयं की क्षमताओं को जानने की, समझने की तथा स्वविवेक, धैर्य, सहनशीलता एवं सद्बुद्धि द्वारा उसका सही उपयोग करने की। हम जानते हैं कि स्वचलित उपकरणों में जितनी ज्यादा अनावश्यक छेड़-छाड़ की जाती है उतनी उसके खराब होने की सम्भावनाएँ बढ़ जाती हैं। अतः उपचार के नाम पर शरीर के साथ यथासंभव अनावष्यक छेड़-छाड़ नहीं की जाए।

शरीर में स्वयं स्वस्थ होने की क्षमता होती है

हम देखते हैं जब किसी व्यक्ति की हड्डी अपना स्थान छोड़ देती है, तो डा ॅक्टर उसको ठीक स्थान पर पुनः स्थित कर छोड़ देता है। जोड़ने का कार्य तो शरीर स्वयं ही करता है। शरीर अपने लिए आवश्यक रक्त का निर्माण स्वयं करता है। आज तक अति आधुनिक प्रयोगशालाओं में भी शरीर के आवश्यक तत्त्वों का निर्माण सम्भव नहीं हो सका। माँ के गर्भ में जब बच्चे का विकास होता है तो पूरे शरीर का निर्माण स्वयं शरीर के द्वारा ही होता है। ये सभी तथ्य हमें सोचने अथवा चिन्तन करने के लिए प्रेरित करते हैं कि शरीर में स्वयं को स्वस्थ रखने की क्षमता अवश्य होनी चाहिए।

दुनियाँ में असंख्य जाति के जीव हैं। चेतनाशील प्राणियों में मानव का प्रतिशत तो 0.1 प्रतिशत से भी कम है। 99.9 प्रतिशत जीव अपना सहज जीवन जीते हैं। उन्हें किसी भी प्रकार की चिकित्सा पद्धति का न तो कोई ज्ञान होता है और न उन्हें अनुभवी चिकित्सकों का परामर्श अथवा सान्निध्य ही मिलता है। सम्पूर्ण मानव जाति तक भी आज की चिकित्सा सुविधाएँ उपलब्ध नहीं है। फिर भी अनादिकाल से जीवन अबाध गति से चल रहा है। कभी-कभी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष कारणों से उपचार न करवा सकने के बावजूद कुछ समय पश्चात् रोग स्वतः ठीक हो जाता है। इसके विपरीत बहुत से रोगी अनुभवी चिकित्सकों से उपचार करवाने के बावजूद रोग-मुक्त नहीं होते। यंत्र और रासायनिक परीक्षण रोग के कारणों का सही निदान नहीं कर सकते। क्योंकि उनके पास अभी तक तनाव, चिन्ता, दुःख, दर्द, पीड़ा, वेदना, संवेदना, आवेग आदि मानसिक रोगों को मापने का साधन नहीं है और वे ही रोग के मूल कारण होते हैं। सजग व्यक्तियों को अपने रोग के कारणों की जितनी सूक्ष्मतम जानकारी होती है उतनी किसी भी चिकित्सक को नहीं हो सकती। शरीर में हजारों रोग होते हैं, जिन्हें रोगी अभिव्यक्त नहीं कर सकता। जितने रोगों को अभिव्यक्त कर सकता है, वे सभी के सभी चिकित्सक अथवा आधुनिक यंत्रों और रासायनिक परीक्षणों की पकड़ में नहीं आ सकते। जो उनकी पकड़ में आ जाते हैं, उनको सभी डा ॅक्टर समझ नहीं सकते। सभी अपना अलग-अलग निष्कर्ष निकाल निदान करते हैं। जब निदान ही अधूरा हो तो दवाओं द्वारा उपचार आंशिक ही हो सकता है।

क्या हम कभी चिन्तन करते हैं कि मनुष्य के अलावा अन्य चेतनाशील प्राणी अपने आपको कैसे स्वस्थ रखते हैं? क्या स्वस्थ रहने का ठेका दवा और डा ॅक्टरों के सम्पर्क में रहने वालों ने ही ले रखा है? चिकित्सा विज्ञान में इतने विकास के बावजूद रोग और रोगियों की संख्या में निरन्तर वृद्धि क्यों हो रही है? वास्तव में इस बात पर विश्वास करना होगा कि शरीर ही अपने आपको स्वस्थ रख सकता है। अच्छी से अच्छी दवा और चिकित्सक तो शरीर को अपना कार्य स्वयं करने में सहयोग मात्र देते हैं। जिसका शरीर जितना सहयोग करेगा, वह उतना ही स्वस्थ होगा। यही सोच अच्छे स्वास्थ्य प्राप्त करने का मूलाधार होता है।

रोग क्या है?

उपचार से पूर्व यह जानना और समझना आवश्यक है कि रोग क्या है? रोग क्यों, कब और कैसे होता है? उसके प्रत्यक्ष, अप्रत्यक्ष कारण क्या हो सकते हैं? शरीर की रोग प्रतिकारात्मक शक्ति क्यों कम होती है और कैसे बढ़ती है? उसके सहायक और विरोधी तत्त्व क्या हैं? क्या शारीरिक रोगों का मन, भाव, वाणी अथवा आत्मा से प्रत्यक्ष-परोक्ष सम्बन्ध होता है? क्या उपचार करते समय उनसे संबंधित कारणों की उपेक्षा तो नहीं होती? उपचार हेतु उपयोग में लिए जाने वाले साधन-सामग्री हिंसा से निर्मित तो नहीं हैं? रोगी का आचरण और जीवन-चर्या शारीरिक क्षमताओं का अनावश्यक दुरुपयोग करने वाली, प्रकृति के सनातन सिद्धान्तों और नियमों के प्रतिकूल तो नहीं हैं?

रोग का मतलब शरीर में विकारों, दोषों, विजातीय अथवा अनुपयोगी तत्त्वों का जमा होकर, शरीर के विभिन्न तन्त्रों के कार्यो में अवरोध अथवा असन्तुलन उत्पन्न करना होता है। वास्तव में प्रकृति के सनातन नियमों का जाने-अनजाने वर्तमान अथवा

भूतकाल में उल्लंघन करना। अर्थात् असंयमित, अनियंत्रित, अविवेकपूर्ण स्वछन्द आचरण के द्वारा शारीरिक, मानसिक एवं आत्मिक क्षमताओं का अपव्यय, दुरुपयोग करने से शरीर में जो विकार उत्पन्न हो, असंतुलन की स्थिति बनती है, वही रोग होता है। ऐसी परिस्थिति में शरीर एवं मन की सभी क्रियाएँ, अंग, उपांग, इन्द्रियां, तंत्र, अवयव आदि अपना-अपना कार्य स्वतंत्रता पूर्वक सामान्य रूप से नहीं कर पाते। फलतः शरीर, मन और आत्मा के अवांछित, विजातीय, अनुपयोगी विकारों का विसर्जन बराबर नहीं होता। उनमें अवरोध उत्पन्न होने से पीड़ा, दर्द, वेदना, जलन, सूजन, विघटन, चेतना की शून्यता, तनाव, बैचेनी, भय, चिन्ता, अधीरता, असजगता, गलत दृष्टिकोण व चिन्तन, जीवन के प्रति निराशा आदि के जो लक्षण प्रकट होते हैं, वही मिलकर रोग कहलाते हैं।

विभाव अवस्था रोग है

स्वास्थ्य का मतलब होता है स्व में स्थित हो जाना अर्थात् अपने निज स्वरूप में आ जाना, विभाव अवस्था से निज स्वभाव में आ जाना। जैसे अग्नि के सम्पर्क से पानी उबलने लगता हैं परन्तु जैसे ही पानी को अग्नि से अलग करते हैं, धीरे-धीरे वह स्वतः ही ठंडा हो जाता है। शीतलता पानी का स्वभाव है, गर्मी नहीं। पानी को वातावरण के अनुरूप रखने के लिए किसी बाह्य आलम्बन की आवश्यकता नहीं होती। उसी प्रकार शरीर में हड्डियों का स्वभाव कठोरता है, परन्तु किसी कारणवश कोई हड्डी नरम हो जाए उसमें लचीलापन आ जाए तो रोग का कारण बन जाती है। मांस-पेशियों का स्वभाव लचीलापन है परन्तु उसमें किसी कारणवश कठोरता आ जाए, गांठ हो जाए अथवा विजातीय तत्त्वों के जमाव के कारण अथवा आवश्यक रसायनों के अभाव के कारण यदि शरीर के किसी भाग की मांसपेशियों में लचीलापन समाप्त हो जाए अथवा क्षमतानुसार न हो तो रोग का कारण बन जाती है। शरीर का तापक्रम 98.4 डिग्री फारेनहाइट रहना चाहिए, परन्तु किसी कारणवश कम या ज्यादा जो जाए तो शरीर में रोग के लक्षण प्रकट हो जाते हैं। रक्त सारे शरीर में आवश्यकतानुसार ऊर्जा पहुँचाने का कार्य अबाध गति से करता है। अतः उसके सन्तुलित प्रवाह हेतु आवश्यक गर्मी एवं निश्चित दबाव आवश्यक होता है, परन्तु यदि हमारी अप्राकृतिक जीवन शैली से रक्त का बराबर निर्माण न हो अथवा दबाव आवश्यकता से कम या ज्यादा हो जाए तो सारे शरीर में प्राण ऊर्जा का वितरण प्रभावित हो जाता है। रक्त नलिकाओं के फैलने अथवा सिकुड़ने की सम्भावनाएँ बढ़ जाती है अर्थात् अपना स्वरूप बदल देती है एवं रोग की स्थिति पैदा हो जाती है।

शरीर का गुण है कि जो अंग और उपांग शरीर के जिस स्थान पर स्थित हैं, उनको वहीं स्थित रखना। हलन-चलन के बावजूद आगे-पीछे न होने देना, शरीर में विकार उत्पन्न होने पर उसको दूर करना और पुनः अच्छा करना। अनावश्यक, अनुपयोगी, विजातीय तत्त्वों का विसर्जन करना। यदि कोई हड्डी टूट जाए तो उसे पुनः जोड़ना। चोट लग जाने से यदि घाव हो जाए तो उसको भरना तथा उस पर पुनः त्वचा का आवरण लगाना। रक्त बहने अथवा रक्त दान आदि से शरीर में जो रक्त की कमी हो गई हो तो उसकी पूर्ति करना। ऐसे अनेक कार्य शरीर के गुण एवं स्वभाव हैं, परन्तु यदि किसी कारणवश शरीर इन कार्यों को बराबर न करे तो यह उसकी विभाव दशा होती है अर्थात् रोगों का प्रतीक होती है।

शरीर विभिन्न तंत्रों का समूह है। जैसे ज्ञान तंत्र, नाड़ी तंत्र, श्वसन, अस्थि, मज्जा, लासिका, प्रजनन, विसर्जन आदि। शरीर में पीयूष, पिनियल, थायरा ॅइड, पेराथायरा ॅइड, एड्रीनल, पेन्क्रियाज, थाइमस, प्रजनन आदि अन्तःस्रावी ग्रन्थियाँ प्रशासक के रूप में कार्य करती हैं। सभी तंत्र आपसी सहयोग, समन्वय, तालमेल, अनुशासन से अपना कार्य स्वयं ही करते हैं, क्योंकि ये चेतनाशील मानव के लक्षण और स्वभाव हैं। परन्तु यदि किसी कारणवश कोई भी तंत्र शिथिल अथवा निष्क्रिय हो जाता है, कार्यो को संचालित और नियंत्रित करने के लिए बाह्य सहयोग या आलम्बन लेना पड़े तो यह शरीर की विभाव दशा होती है, अतः यह रोग का सूचक होता है।

रोग हमारा मित्र है शत्रु नहीं

अधिकांश रोगों का कारण हम स्वयं ही होते हैं। रोग के सम्बन्ध में हमारी गलत धारणाएँ हैं। दर्द अथवा रोग के अन्य लक्षण हमें सजग करते हैं। अपने कत्रतव्य बोध हेतु चिन्तन करने की प्रेरणा देते हैं। हमें चेतावनी देते हैं, कि हम अपने आपका निरीक्षण कर, अपने आपको बदलें ताकि पीड़ा मुक्त, तनाव मुक्त जीवन जी सकें। हम स्पप्न में जी रहे हैं यानी बेहोशी में हैं। दर्द अथवा रोग

के अन्य संकेत उस बेहोशी को भंग कर हमें सावधान करते हैं परन्तु सही दृष्टि न होने से हमने, उनको शत्रु मान लिया है। रोगी शरीर की आवाज सुनना और भाषा को समझना नहीं चाहता। उपचार स्वयं के पास है और खोजता है बाजार में, डाॅक्टर और दवाइयों के द्वारा। फलतः दवा द्वारा रोग के कारणों को दबा कर खुश होने का असफल प्रयास करता है। रोगी जितना डाॅक्टर, दवा अथवा अन्य शुभचिन्तकों, अधूरे ज्ञान वाले सलाहकारों पर विश्वास करता है, उतना अपने आप पर एवं अपनी क्षमताओं पर विश्वास नहीं करता। यही तो सबसे बड़ा मिथ्यात्व (गलत मान्यता) है। जब रोग का कारण स्वयं है तो उपचार भी स्वयं के पास अवश्य होना चाहिए। शरीर की स्वचलित प्रणाली आँतें, गुर्दे, फेंफड़े और त्वचा शरीर के किसी भी भाग में एकत्र हुए अनुपयोगी, विजातीय अथवा अवांछित तत्त्वों को किसी न किसी प्रकार का सफाई अभियान चलाकर, उसे जुखाम, बुखार, फोड़े-फुन्सी, मल-मूत्र अथवा पसीने आदि के रूप में शरीर से बाहर फेंक कर शरीर की विभिन्न कार्य प्रणालियों के कार्य को सामान्य रूप में लाने का प्रयास करती है। प्रकृति रोग के द्वारा यह दर्शाती है कि हम गलती कर रहे हैं। प्रारम्भिक अवस्था में प्रकट होने वाले रोग के लक्षण हमारे मित्र होते हैं। हमें हमारी असजगता के कारण भविश्य में होने वाले दुश्परिणामों की चेतावनी देकर सचेत करते हैं। यह तो हमारे शारीरिक प्रक्रिया का एक उपकारी एवं हितैशी कार्य है, जिसमें हमें सहयोग करना चाहिए। यह कोई शत्रुता पूर्ण कार्य नहीं जिसे रोका जाए, विरोध किया जाए अथवा जिसे नश्ट किया जाए। परन्तु अज्ञानवश आज हम इन संकेतों को दुश्मन मान दवाइयों द्वारा उनको दबा कर अपने आपको बुद्धिमान समझने की भूल कर रहे हैं। कचरे को दबाकर अथवा छिपाकर रखने से उसमें अधिक सड़ांध, बदबू अथवा अवरोध की समस्या ही पैदा होगी। दीमक लगी लकड़ी पर रंग रोगन करने से बाहरी चमक भले ही आ जावे, परन्तु मजबूती नहीं आ सकती। औशधियों के माध्यम से इस सफाई अभियान को रोकने से तो विशैले अथवा दूशित तत्त्वों के शरीर के अन्दर रुके रहने से धीरे-धीरे शरीर की कार्यप्रणाली में अवरोध बढ़ता जाएगा। जो भविश्य में विभिन्न गम्भीर रोगों को जन्म देने का कारण बनते हैं। अधिकांश मौसमी एवं वायरस रोगों का यही प्रमुख कारण होता है। वे चाहे मलेरिया, चेचक, चिकनगुनिया, डेंगू, प्लेग, इबेलो, एन्थ्रेक्स, स्वाइन फ्लू आदि किसी भी नाम से पुकारे जाते हों। दवाओं द्वारा लक्षणों को दबा देने से एक तरफ तो रोग के कारण बने रहते हैं, दूसरी तरफ दवाएँ प्रायः शरीर की रोग प्रतिकारात्मक क्षमताओं को क्षीण कर देती हैं। परिणाम स्वरूप भविश्य में नित्य नवीन रोगों के पनपने की संभावनाएँ बनी रहती है।

विज्ञान से प्रभावित आधुनिक जन-जीवन

आज का युग वैज्ञानिक युग कहलाता है। भौतिक जगत में विज्ञान के चमत्कारों ने असम्भव को सम्भव, परोक्ष को प्रत्यक्ष दिखलाने में काफी सफलताएँ प्राप्त की है। भौतिक सुख-सुविधाओं, आवागमन, संचार माध्यमों के साधनों को सुलभ बनाया है। प्रायः जीवन के अधिकांश क्षेत्र उससे प्रभावित हो रहे हैं। इन्टरनेट, कम्प्यूटर, टी.वी., मोबाइल फोन, संचार और आवागमन आदि के साधनों के विकास के कारण संसार में बाह्य दूरियाँ कम होती जा रही हैं। दैनिक जीवन में उपयोग के लिए बिजली द्वारा संचालित शारीरिक सुविधा प्रदान करने वाले पंखे, कूलर, एयर कंडीशनर, वांशिग मशीन, रेफ्रिजरेटर एवं अन्य घरेलू उपकरण आदि उसके लिए आज्ञाकारी नौकर के समान कार्य कर रहे हैं। उनके अभाव में जीवन अस्त-व्यस्त होने लगता है। बिजली, चुम्बकीय, सौर, पेट्रोल, परमाणु, रसायन, हवा, पानी आदि ऊर्जाओं के स्त्रोतों की खोज से मानव को भौतिक रूप से शक्तिशाली बनाने में विज्ञान की भूमिका से नकारा नहीं जा सकता।

चिकित्सा के क्षेत्र में वैज्ञानिक उपलब्धियाँ

चिकित्सा के क्षेत्र में शल्य चिकित्सा द्वारा हृदय, लीवर, गुर्दों, नेत्र की पुतलियों आदि का प्रत्यारोपण सम्भव हो सका है तथा शरीर के किसी भी भाग में जमा विकृतियों को दूर कर, षारीरिक रोगों में राहत दिलाने में आश्चर्यजनक सफलता प्राप्त की है। चश्मों द्वारा आँखों की, श्रवण यंत्रों द्वारा कान की भौतिक क्षमता बढ़ाने में भी आंशिक सफलता मिली है। इंजेक्शन द्वारा शरीर में सीधे आवश्यक अवयव पहुँचाने में, डायलेसिस द्वारा रक्त की सफाई, विकलागों के लिए कृत्रिम हाथ पैर उपलब्ध कराने, एक्स-रे, ई.सी.जी., सी.टी. स्केन, एम.आर.आई., सोनोग्राफी आदि उपकरणों के माध्यम से शरीर की आन्तरिक प्रणाली को देखने और समझने में विज्ञान को काफी सफलता मिली है। प्रयोगशालाओं में रक्त, मल, मूत्र, वीर्य, मांस,मज्जा आदि शरीर के अवयवों का परीक्षण कर उसमें आवश्यक तत्त्वों के असन्तुलन को समझ शारीरिक रोगों के निदान को तर्कसंगत बना दिया है तथा उसके

अनुरूप बाह्य साधनों से उनका सन्तुलन कर शीघ्र राहत पहुँचाने में उत्साहजनक प्रगति की है। छुआछूत रोगों के नियंत्रण, महामारियों की रोकथाम, दुर्घटना जैसी परिस्थितियों में अभी तक अन्य चिकित्सा पद्धतियाँ इतनी अधिक तुरन्त राहत पहुँचाने में सक्षम नजर नहीं आतीं, जितनी आधुनिक चिकित्सा के परिणाम है। आधुनिक चिकित्सकों को शरीर के प्रत्येक अंग, उपांग, अवयवों के क्रियाकलापों की जितनी विस्तृत भौतिक जानकारी होती है, उतनी प्रायः अन्य चिकित्सकों को नहीं होती।

अहिंसात्मक चिकित्सा पद्धतियों में आत्मा और मन की उपेक्षा नहीं

एक्युप्रेशर, चुम्बक, शिवाम्बु, स्वर, नाभि जैसी अनेक अहिंसात्मक स्वावलम्बी मौलिक प्रकृति के सनातन सिद्धान्तों पर आधारित चिकित्सा पद्धतियों के चिकित्सक को भले ही शरीर के प्रत्येक अंग अथवा अवयव की सूक्ष्म जानकारी न भी हो, फिर भी अधिकांश स्वावलम्बी अहिंसात्मक चिकित्सा पद्धतियाँ आत्मिक अनुभूतियों की उपेक्षा नहीं करती। रोग का कारण रोगी की अप्राकृतिक जीवन शैली में ही ढूँढ़ उपचार करती है। शरीर के विभिन्न अंगों का गहनतम शोध करना गलत नहीं, उसका बहुत महत्त्व है, उपयोगिता और आवश्यकता है, परन्तु उससे भी ज्यादा जरूरी, प्राथमिक और महत्त्वपूर्ण मन एवं आत्मा की शक्तियों पर ध्यान देना परम आवश्यक है। तुरन्त राहत के नाम पर उसकी उपेक्षा कहाँ तक उचित है? स्वच्छ कपड़े पहनकर आभूषण पहनने से शरीर की शोभा काफी बढ़ जाती है। फटे-पुराने अथवा गन्दे कपड़ों पर आभूषण शोभा नहीं देते। बिना कपड़े आभूषण पहनने वालों को मूर्ख अथवा पागल कहते हैं। उपचार के नाम पर आत्मा और मन को विकारी बनाने वाले स्वयं निर्णय करें कि उनकी प्राथमिकता कितनी सही है?

चिकित्सा हेतु जनसाधारण की मानसिकता

आज जनसाधारण एवं स्वास्थ्य मंत्रालय आधुनिक चिकित्सा के नाम से प्रचलित अंग्रेजी एलोपैथिक चिकित्सा को ही चमत्कारिक, प्रभावशाली और वैज्ञानिक मानते हैं। अन्य प्रभावशाली चिकित्सा पद्धतियों की वैज्ञानिकता पर अधिकांश व्यक्ति सन्देहास्पद दृष्टिकोण रखते हैं। जब तक कोई तथ्य आज के तथाकथित भौतिक विज्ञान द्वारा मान्य एलोपैथिक चिकित्सकों द्वारा प्रमाणित नहीं हो जाता तब तक, प्रायः जनसाधारण अन्य चिकित्सा पद्धतियों के बारे में जानने, समझने, सुनने, स्वीकारने और अपनाने में संकोच करता है। भले ही वे पद्धतियाँ अनुभूत सत्य पर ही आधारित क्यों न हों?

परिणामस्वरूप अधिकांश रोगी जो उपचार भले ही अन्य चिकित्सा से करवाते हों, परन्तु निदान तो आधुनिक चिकित्सकों के परामर्श एवं निर्देशानुसार ही करवाना आवश्यक समझते हैं। रोग में राहत मिलने के बाद तथा रोग के लक्षणों के समाप्त हो जाने के पश्चात् भी जब तक एलोपैथिक डाॅक्टर रोग की अनुपस्थिति की पुष्टि नहीं करते, तब तक उनमें उपचार की विश्वसनीयता पर सन्देह बना रहता है। श्रद्धा और समर्पण के अभाव में उपचार की प्रभावशीलता तो वैसे ही कम हो जाती है। ऐसे रोगी अपनी मानसिकता के कारण अन्य प्रभावशाली अहिंसक चिकित्सा पद्धतियों का पूर्ण लाभ नहीं ले पाते। साथ ही अन्य चिकित्सा के लम्बे-चैड़े दावे करने वाले, कम अनुभवी बहुत से चिकित्सक, जिन्हें अपनी चिकित्सा के मौलिक सिद्धान्तों की गहन जानकारी नहीं होती अथवा पूर्ण अनुभव नहीं होता, वे चिकित्सक भी आत्मविश्वास एवं स्वयं की चिकित्सा पद्धतियों की प्रभावशीलता पर पूर्ण विश्वास न होने से, स्वयं के रोगग्रस्त होने की स्थिति में अपनी चिकित्सा पद्धति से निदान अथवा उपचार करने के बजाय तात्कालिक राहत हेतु ऐलोपैथिक उपचार लेना पसन्द करते हैं, तो स्वावलम्बी चिकित्सा की प्रभावषीलता के सारे दावे जनसाधारण को खोखले लगने लगते हैं। परिणामस्वरूप जनसाधारण अन्य स्वावलम्बी चिकित्सा पद्धतियों के प्रति जल्दी आकर्षित नहीं होता।

आधुनिक विज्ञान और स्वास्थ्य

विज्ञान क्या है?

किसी भी वस्तु के सूक्ष्मावलोकन एवं विश्लेषण से प्राप्त यथार्थ ज्ञान को विज्ञान कहते हैं। वैज्ञानिक दृष्टिकोण का मतलब ऐसी क्षमता से कार्य करना होता है जिसमें कम से कम निवेश में अधिक से अधिक लाभ हो तथा हानि और दुष्प्रभाव भी कम से कम हो। सत्य की खोज का नाम विज्ञान है। अर्थात् विज्ञान का मतलब पूर्ण ज्ञान, सम्यक् ज्ञान। विज्ञान सत्य को स्वीकारता है और झूठ को नकारता है। उसका एक मात्र आग्रह, पूर्ण सत्य पर होता है। जैसे-जैसे आंशिक अथवा अधूरे सत्य की पोल खुलने लगती है वर्तमान

की वैज्ञानिक मान्यता को भविष्य में अवैज्ञानिक करार दे दिया जाता है। अर्थात् जो सत्य को परिभाषित करता है, वही सच्चा विज्ञान होता है। विज्ञान का आधार होता है- ‘‘सच्चा सो मेरा’’ न कि ‘‘मेरा जो सच्चा’’। वास्तव में जो सत्य है उसको स्वीकारने में किसको आपत्ति हो सकती है? परेशानी तो तब होती है, जब विज्ञान के नाम पर आंशिक तथ्यों पर आधारित, अधूरे सत्य को पूर्ण बतलाने का प्रयास किया जाता है। कभी-कभी अपनी बातों को वैज्ञानिक बतलाने हेतु मायावी आंकड़े, भ्रामक विज्ञापनों एवं संख्या बल का सहयोग लिया जाता है तथा वास्तविकता एवं सनातन सत्य को नकारा जाता है। अपनी पद्धतियों को वैज्ञानिक तथा अन्य पद्धतियों को अवैज्ञानिक बतलाने का दुष्प्रचार किया जाता है। हमारा दृष्टिकोण संकुचित हो जाता है। विज्ञान के मूल मापदण्ड गौण होने लगते हैं। किसी भी तथ्य को वैज्ञानिक मानने के लिए अंतिम परिणामों की एकरूपता भी आवश्यक होती है, भले ही वह प्रयोग किसी के द्वारा कहीं पर भी क्यों न किया गया हो। पानी पीने से प्यास शांत होती है। अग्नि का स्पर्श जलाता है। शरीर में पिन चुभने से चीख निकलती है आदि ऐसे अनुभूत सत्य हैं, जिनके लिए परिणामों को प्रमाणित करने के लिए आंकड़ों के संकलन की आवश्यकता नहीं होती। उसी प्रकार जो अहिंसक, स्वावलम्बी एवं प्रभावषाली उपचार दुश्प्रभावों से रहित हो और रोगों से मुक्ति दिलाते हों, जो प्रकृति के सनातन सत्य पर आधारित हों, उनको भौतिक सत्यापन एवं संकलित आंकड़ों के अभाव में स्वीकार न करना, हमारी पूर्वग्रसित मान्यताओं का सोच हो सकता है, विज्ञान का नहीं। अधिकांष आधुनिक चिकित्सकों का अपनी खोजों की वैज्ञानिकता सिद्ध करने का दावा लगभग ऐसा ही लगता है।

वैज्ञानिक शोध का आधार होना चाहिए अंतिम परिणामों का स्पष्ट प्रकटीकरण। अर्थात लाभ और हानि का सही विश्लेषण। प्रत्येक चिकित्सक अपनी उपलब्धियों को तो बढ़ा-चढ़ा कर प्रस्तुत करते हैं, प्रचारित करते हैं, परन्तु जहाँ-जहाँ अपेक्षित परिणाम नहीं मिलते अथवा दुष्प्रभाव पड़ते हैं, उनके कारणों का उल्लेख तक नहीं करते। स्वास्थ्य विज्ञान की शोध के आधार में एकरूपता होनी चाहिए। अर्थात् जिन रोगियों अथवा प्राणियों पर दवाओं अथवा उपचार के जो प्रयोग किए जाते हैं, उनका खान-पान, रहन-सहन, आचार-विचार, चिन्तन-मनन की प्रक्रिया, स्वभाव, मानसिकता, सोच, पारिवारिक समस्याएँ तथा शरीर में अप्रत्यक्ष एवं सहयोगी रोगों की एकरूपता भी आवश्यक होती है। क्योंकि ये ही सब कारण रोग से सम्बन्धित होते हैं, परन्तु ऐसी परिस्थितियाँ सभी रोगियों में एक सी होना कभी भी सम्भव नहीं होती। अतः ऐसे निदान कैसे वैज्ञानिक और सत्य पर आधारित समझे जा सकते हैं? चिन्तन का प्रश्न है।

जीवन में चेतना का महत्त्व

सारा शरीर मुख्यतया दो प्रकार की ऊर्जाओं से संचालित होता है। प्रथम भौतिक ऊर्जा तथा दूसरी चैतन्य ऊर्जा। किसी एक के पूर्ण अभाव में मानव जीवन चल ही नहीं सकता। भौतिक ऊर्जा शरीर के अंगों, उपांगों, अवयवों, तंत्रों आदि के निर्माण हेतु आवश्यक साधन उपलब्ध करने में सहायक होती है और चैतन्य ऊर्जा उन उपलब्ध साधनों से उनका निर्माण, संचालन और नियंत्रण करती है। चैतन्य ऊर्जा के अभाव में न तो शारीरिक अवयवों आदि का निर्माण ही सम्भव होता है और न ही जीवन। भौतिक उपलब्धियों के विकास के बावजूद चैतन्य ऊर्जा के अभाव में, अभी तक आधुनिक चिकित्सा वैज्ञानिकों द्वारा शरीर के लिए आवश्यक कोशिकाओं, रक्त, अस्थियों, माँस पेशियों, नाड़ियों, वीर्य आदि अवयवों तथा आँख, कान, नाक जैसी इन्द्रियों एवं हृदय, फेंफड़े, गुर्दे, लीवर जैसे अंगों का निर्माण प्रयोगशालाओं में सम्भव नहीं हो सका। चैतन्य ऊर्जा की उपलब्धता आत्मा पर षुभाषुभ कर्मो के अनुसार होती है। अतः उपचार करते समय जो चिकित्सा पद्धतियाँ भौतिक और चैतन्य ऊर्जाओं को ठीक रखने, सन्तुलित रखने के सिद्धान्तों पर कार्य करती हैं, वे ही अपने आपको वैज्ञानिक बतलाने का वास्तव में दावा कर सकती हैं।

भौतिक विज्ञान की सीमाएँ

भौतिक विज्ञान का आधार वही पदार्थ होता है, जिसे दिखाया जा सके, जो मापा जा सके, जो प्रयोगों, परीक्षणों से प्रमाणित किया जा सके। ऐसे परिणाम जो तथ्य, तर्क एवं आंकड़ों से लिपिबद्ध किए जा सकें। जिसका आधार निरीक्षण, विश्लेशण, निश्चित प्रक्रिया पर आधारित व्यवस्थित आंकड़ों द्वारा संकलित एवं प्रमाणित हो। जिसका उपयोग, संचालन, नियंत्रण प्रायः व्यक्ति स्वयं अथवा अन्य कोई व्यक्ति द्वारा निश्चित विधि का पालन कर बिना किसी बाह्य भेदभाव कहीं भी किया जा सके। आवश्यकता पड़ने पर जिसका पुनरावर्तन किया जा सके। जैसे विज्ञान द्वारा विकसित सभी सुविधाओं के साधन, उपकरण, यंत्र आदि का उपयोग

कोई भी कर सकता है। उपर्युक्त मापदण्डों के आधार पर विज्ञान के नाम पर आज तक जो कुछ उपलब्धियाँ विकसित हुई हैं अथवा हो रही हैं, उन सभी का सम्बन्ध प्रायः भौतिकता से ही होता है। अनुभूति, चैतन्य ऊर्जा में वृद्धि और अप्रत्यक्ष पड़ने वाले प्रभाव उसमें उपेक्षित होते हैं। सभी अदृश्य, अरूपी पदार्थ उसकी पकड़ में नहीं आते।

जड़ विज्ञान और आध्यात्मिक विज्ञान में भेद

जड़ विज्ञान का कार्य क्षेत्र होता है- भौतिक विकास, भौतिक सफलताएँ, भौतिक उपलब्धियाँ आदि। उसका आधार होता है परावलम्बन, जबकि आध्यात्मिक विज्ञान से आत्म विकास का मार्ग प्रशस्त होता है। उसका आधार होता है स्वावलम्बन अर्थात् स्वयं के द्वारा स्वयं का निरीक्षण, परीक्षण, नियंत्रण, संचालन। उसका परिणाम होता है- आत्मानुभूति, मनोबल और आत्मबल का विकास। भौतिक विज्ञान व्यक्ति को विशिश्ट बनाता है, जबकि आध्यात्मिक ज्ञान मानव को स्वाभाविक बनाता है। भौतिक विज्ञान प्रयोग में विश्वास करता है, जबकि आध्यात्म विज्ञान योग में। विज्ञान शक्ति की खोज करता है, जबकि आध्यात्म शान्ति की। जिस प्रकार बिजली का तार और उसमें प्रवाहित विद्युत अलग-अलग होती है। उसी प्रकार जड़ से सम्बन्धित शरीर और चेतना से संबंधित आत्मा अलग-अलग होती है। अतः दोनों से सम्बन्धित ज्ञान का लक्ष्य भी अलग-अलग होता है।

अध्यात्म से शून्य स्वास्थ्य विज्ञान अपूर्ण

जिस चिकित्सा विज्ञान में शारीरिक स्वास्थ्य ही प्रमुख हों, मन, भावों अथवा आत्मा के विकार जो अधिक खतरनाक, हानिकारक होते हैं, गौण अथवा उपेक्षित होते हों, ऐसी चिकित्सा पद्धतियों को ही वैज्ञानिक समझने वाले, विज्ञान की बातें भले ही करते हों, विज्ञान के मूल सिद्धान्तों से अपरिचित लगते हैं। विज्ञान शब्द का अवमूल्यन करते हैं। सनातन सत्य पर आधारित प्राकृतिक सिद्धान्तों को नकारते हैं। ऐसी सोच गाड़ी में पेट्रोल डाल चालक को भूखा रखने के तुल्य ही होती है। ऐसी गाड़ी में यात्रा करने वाला यात्री लम्बी दूरी की यात्रा कैसे कर सकेगा? चैतन्य आत्मा की उपेक्षा नौकर को सेठ से ज्यादा महत्त्व देने के समान नासमझी होती है। उसी प्रकार आत्मा रूपी मालिक की उपेक्षा कर मात्र शरीर का ही खयाल रखने वालों को ज्ञानी, समझदार, बुद्धिमान कैसे कहा जाए?

क्या उपचार में राहत ही पूर्ण चिकित्सा है?

रोग में राहत का बहुत महत्त्व होता है। राहत का मतलब होता है कि किसी भी विधि द्वारा रोग के प्रभाव को कम करना जिससे दर्द, पीड़ा,बेचैनी कम हो जाए एवं शरीर में सहनीय स्थिति उत्पन्न हो जाए। अर्थात् राहत की प्राथमिकता रोग को दबाने अथवा असक्रिय करने तक सीमित होती है, न कि रोग को जड़ से मिटाने अथवा निश्क्रिय करने की। जैसे अंगारे पर राख आ जाने से उसकी गर्मी का प्रभाव कम हो जाता है। दीमक लगी लकड़ी पर रंग-रोगन करने से उसकी खराबी छिप जाती है। कचरे पर कपड़ा डालने से अस्वच्छता ध्यान में नहीं आती। जबकि अंगारे की गर्मी, लकड़ी में दीमक लगने से आने वाली खराबी एवं कचरे का दुश्प्रभाव बना रहता है। अतः जब तक रोग का कारण बना रहता है, भविश्य में रोग होने की सम्भावनाएँ सदैव बनी रहती है। अच्छे उपचार का मतलब रोग को जड़ से दूर करना। सदैव के लिए उसके कारणों, लक्षणों एवं प्रभाव को निश्क्रिय करना, ताकि भविश्य में उन कारणों से किसी भी रूप में रोग की पुनरावृत्ति न हो। आधुनिक चिकित्सा पद्धति का उद्देश्य एवं प्राथमिकताएँ तात्कालिक परिणामों पर आधारित होने से प्रायः राहत तक ही सीमित होता है। उपचार के कारण भविश्य में पड़ने वाले दवाओं के दुश्प्रभावों की उपेक्षा होती है। संक्रामक और असाध्य रोगों में तो दवा जीवनपर्यन्त आवश्यक बन जाती है।

वर्तमान में एलौपैथिक चिकित्सा की पोशक सरकारी नीतियाँ

एलोपैथिक चिकित्सा की तथा कथित विशेशताओं के कारण तथा मानव की भौतिक दृश्टि की प्रधानता होने से यह पद्धति वर्तमान युग में अधिकांश देशों में सर्वमान्य बन गई है। इसे ही पूर्णतया वैज्ञानिक समझा जा रहा है। उसी को सरकारी मान्यता, संरक्षण एवं पूर्ण सहयोग और सुविधाएँ उपलब्ध है। स्वास्थ्य मंत्रालय और चिकित्सा से सम्बन्धित नीति निर्माता एवं सरकारी संचार एवं प्रचार माध्यम उनके प्रति पूर्ण रुचि लेकर खुल्लम-खुल्ला प्रचार कर रहे हैं। स्वास्थ्य संबंधी सभी नीतियाँ उनके

सिद्धान्तों के आधार पर बनायी जाती है, भले ही वे आयुर्वेद, युनानी, होमियोपैथी जैसी सरकारी मान्यता प्राप्त पद्धतियाँ ही क्यों न हो और प्रकृति के सनातन सिद्धान्तों की उपेक्षा करती हो। अन्य प्रभावशाली स्वावलम्बी चिकित्सा पद्धतियों के प्रचार-प्रसार हेतु अपेक्षित बजट का प्रावधान नहीं है। सारे स्वास्थ्य मंत्रालय पर अंग्रेजी चिकित्सा पद्धति के प्रशंसकों, हित चिन्तकों, समर्थकों का पूर्ण नियंत्रण है। अंग्रेजी चिकित्सा को वैज्ञानिक, विकासोन्मुख प्रभावशाली, उपयोगी तथा अन्य प्रभावशाली स्वावलम्बी अहिंसक चिकित्सा पद्धतियों को अवैज्ञानिक, अविकसित, अनुपयोगी, प्रभावहीन, सहयोगी चिकित्सा के रूप में प्रचारित किया जा रहा है। आधुनिक चिकित्सा एवं दवाओं के दुश्प्रभावों से जो नए-नए रोग उत्पन्न हो रहे हैं उनका कारण, समाधान उनसे सम्बन्धित चिकित्सकों से ही पूछा जा रहा है। ऐसा समाधान सदैव कैसे सत्य पर आधारित हो सकता है?

दवा निर्माताओं के लुभावने, मायावी, भ्रामक विज्ञापनों एवं दबाव के कारण तथा सरकार के पूर्वग्रसित अविवेकपूर्ण दृश्टिकोण एवं प्रभावशाली अन्य स्वावलम्बी चिकित्सा पद्धतियों का सही ज्ञान नहीं होने के कारण, हमारा स्वास्थ्य मंत्रालय एलोपैथिक चिकित्सा के हितों का पोशक बनकर कार्य कर रहा है। एलोपैथिक चिकित्सा के दुश्प्रभावों को छुपाने की प्रवृति तथा लाभ के एक पक्षीय मिथ्या आंकड़ों को प्रचारित करने की सरकारी माध्यम से छूट मिलने के कारण, राश्ट्र की भोली जनता भ्रमित हो अपने स्वास्थ्य के साथ खिलवाड़ कर रही है। जबरदस्ती टीकाकरण, आयोडिन नमक की अनिवार्यता एवं मिनरल वाटर का व्यवसाय उसी मानसिकता का परिणाम है। चिकित्सा के मामले में आज हम कितने स्वतंत्र है, चिन्तन का प्रश्न है?

आधुनिक चिकित्सा को सर्वेसर्वा मानने का दुश्परिणाम

आधुनिक चिकित्सा पद्धति को अत्यधिक महत्त्व मिलने तथा सरकारी मान्यता, सहयोग और संरक्षण मिलने के कारण अधिकांश डा ॅक्टरों में अन्य प्रभावशाली, स्वावलम्बी, अहिंसात्मक चिकित्सा पद्धतियों के प्रति गुण ग्राहकता नजर नहीं आती। कभी-कभी तो वे अनायास उन पर बिना सोचे-समझे आरोप अथवा मिथ्या प्रचार करते तनिक भी नहीं हिचकिचाते। जनमानस की उनके प्रति अटूट आस्था होने से उनके कथनों का जनता पर ज्यादा और जल्दी प्रभाव पड़ता है। विज्ञापन, अन्धानुकरण, शीघ्रता के इस युग में अज्ञानवश अपनी क्षमताओं से अपरिचित होने के कारण तथा प्रकृति के सनातन सिद्धान्तों और आयुश्य कर्म के सिद्धान्तों पर विश्वास न होने के कारण आज के डा ॅक्टरों को भगवान से ज्यादा महत्त्व मिल रहा है। कभी-कभी डा ॅक्टर ऐसा कहते सुने गए हैं कि समय पर डा ॅक्टर की उपलब्धता के कारण रोगी को मृत्यु से बचाया जा सका, मानो अस्पतालों में डा ॅक्टरों की उपस्थिति में तो शायद ही कोई मरता हो। दुश्प्रभावों की उपेक्षा तथा रोगी की विवशता के कारण मानव सेवा का यह कार्य मात्र स्वार्थ-पोशण और अर्थ उपार्जन तक सीमित होता जा रहा है। रोगी को निदान और उपचार के सम्बन्ध में उत्पन्न शंकाओं का सही एवं संतोशजनक समाधान नहीं बतलाया जा रहा है, परिणामस्वरूप अपनी असजगता के कारण आज अनेक रोगी डा ॅक्टरों की प्रयोगशाला बन रहे हैं।

स्वावलम्बी चिकित्सा पद्धतियों पर चिन्तन आवश्यक

कोई भी चिकित्सा पद्धति अपने आप में सम्पूर्ण नहीं होती और न कोई चिकित्सा पद्धति ऐसी होती है, जिसमें कोई विशेशता ही न होती हों। अर्थात् जो अंग्रेजी चिकित्सा पद्धति के सिद्धान्त, मान्यताएँ, धारणाएँ हैं, वे ही सम्पूर्ण सत्य है और बाकी सभी चिकित्सा पद्धतियों को अवैज्ञानिक, अनुपयोगी, अविकसित, अनावश्यक बतला कर उपेक्षा करना कदापि उचित नहीं है। किसी तथ्य को बिना सोचे-समझे स्वीकार करना यदि मूर्खता है, तो किसी अनुभूत सत्य को बिना सोचे-समझे नकारना भी बुद्धिमत्ता नहीं हो सकता। जिस प्रकार हीरे की पहचान डा ॅक्टर, वकील, नेता अथवा सेनापति नहीं कर सकता, उसके लिए जौहरी की दृश्टि चाहिए। ठीक उसी प्रकार स्वावलम्बी अहिंसात्मक चिकित्सा पद्धतियों की प्रभावषीलता के प्रभाव का निश्कर्श, आधुनिक चिकित्सा पद्धतियों के चिकित्सक नहीं बता सकते। उसके लिए आवश्यक है, पूर्वाग्रहों से मुक्त खुला दिमाग, सम्यक् चिन्तन तथा प्रकृति के सनातन सिद्धान्तों का सही ज्ञान? हम किसी बात पर विश्वास न करें, परन्तु उस सम्बन्ध में बिना पूर्ण जानकारी, अज्ञानवश अविश्वास करना भी उचित नहीं। जिस प्रकार यदि कोई अशिक्षित व्यक्ति अनुभवी डा ॅक्टरों की भरी सभा में चिकित्सा विशयों पर अधिकारपूर्वक बोले तो उसकी बात का क्या महत्त्व? उसकी क्या सार्थकता? उसी प्रकार जानकारी के अभाव में आधुनिक चिकित्सकों द्वारा पूर्वग्रसित सोच के कारण अन्य चिकित्सा पद्धतियों पर नीति सम्बन्धी अभिमत देना नासमझी है।

अच्छी चिकित्सा पद्धति के मापदण्ड

अच्छी चिकित्सा पद्धति शरीर को आरोग्य ही नहीं, नीरोग रखती है। अर्थात् जिससे शरीर में रोग उत्पन्न ही न हो। रोग होने का कारण आधि (मानसिक रोग), व्याधि (शारीरिक रोग), उपाधि (कर्मजन्य रोग) के विकार होते हैं। अतः अच्छी चिकित्सा तीनों प्रकार के विकारों को समाप्त कर समाधि दिलाने वाली होती है। अच्छी चिकित्सा पद्धति के लिए आवश्यक होता है- रोग के मूल कारणों का सही निदान, स्थायी एवं प्रभावशाली उपचार। इसके साथ-साथ जिस पद्धति में रोग का प्रारम्भिक अवस्था में ही निदान हो सके तथा जो रोगों को रोकने में सक्षम हो। जो पद्धति सहज हो, सरल हो, सस्ती हो, स्वावलम्बी हो, दुश्प्रभावों से रहित हो, पूर्ण अहिंसक हो तथा जिसमें रोगों की पुनरावृत्ति न हो। जो चिकित्सा शरीर को स्वस्थ करने के साथ-साथ मनोबल और आत्मबल बढ़ाती हो तथा जो सभी के लिए, सभी स्थानों पर सभी समय उपलब्ध हो। अच्छी चिकित्सा पद्धति के तो प्रमुख मापदण्ड यही होते हैं। जो चिकित्सा पद्धतियाँ इन मूल सनातन सिद्धान्तों की जितनी ज्यादा पालना करती है, वे उतनी ही अच्छी चिकित्सा पद्धतियाँ होती हैं। अच्छी चिकित्सा का मापदण्ड भीड़ अथवा विज्ञापन नहीं होता अपितु अन्तिम परिणाम होता है। मात्र रोग में राहत ही नहीं, स्थायी उपचार होता है। दवाओं की दासता से मुक्ति होती है। अतः जो रोगी उपचार से पूर्व निदान और उपचार की सत्यता पर अपनी शंकाओं का चिकित्सक से सन्तोशजनक समाधान प्राप्त करने के पश्चात् उपचार कर पाता है, वह शीघ्र ही रोगमुक्त हो जाता है।

उपचार से पूर्व निदान की सच्चाई पर चिन्तन आवश्यक

जानवर चिन्तन और मनन नहीं कर सकता। मनुश्य ही अपनी बुद्धि, ज्ञान एवं सद्विवेक द्वारा भविश्य में आने वाली विपत्तियों से अपने आपको बचा सकता है। जो अपना भला बुरा न सोचे, दुश्प्रभावों की उपेक्षा करे, निदान और उपचार के तौर तरीके का विश्लेशण न करे, उसमें और पशु में क्या अन्तर है? उपचार से पूर्व रोगी को यथासम्भव निदान की सत्यता एवं उपचार की यथार्थता की समीक्षा करनी चाहिए।

उपचार से पूर्व स्वास्थ्य के प्रति सजग व्यक्तियों को रोग का कारण एवं चिकित्सकों द्वारा निवारण हेतु दिए जा रहे उपायों के सम्बन्ध में अपनी शंकाओं का स्पश्टीकरण प्राप्त करने का प्रयास करना चाहिए। जैसे किसी व्यक्ति के घुटनों में दर्द है, तो चिकित्सक से उसका कारण जानना चाहिए। दवा उस कारण को कैसे दूर करेगी? शरीर में उससे आवश्यक अवयव कौन बनाता है और उन अवयवों से कौन-कौन से तंत्र प्रभावित होते हैं? उस अवयव की कमी या उससे सम्बन्धित शरीर के अन्य स्थानों अथवा तंत्रों पर प्रभाव क्यों नहीं पड़ा? क्या दवा में आवश्यक अवयवों की मात्रा का निर्धारण कम अथवा ज्यादा तो नहीं है? दवा से क्या-क्या दुश्प्रभाव सम्भावित हो सकते हैं? मुँह में ली गई दवा का प्रभाव दर्द वाले स्थान पर कैसे और कितना पहुँचता है? दवा का प्रभाव कितनी देर तक रहता है? स्थायी क्यों नहीं? ऐसे सम्बन्धित प्रश्नों पर उपचार लेते समय रोगी अथवा उसके परिजनों को चिन्तन कर सम्यक् समाधान प्राप्त करना चाहिए? क्या जानवर बीमार नहीं होते? क्या सभी जानवर बिना डाॅ. एवं दवा के ठीक नहीं होते? रोग के समय उपचार हेतु उनको स्वानुभूति कैसे हो जाती है? इतनी सजगता, जागृति और स्वविवेक होने से उपचार के प्रति रोगी की मानसिकता और आत्मविश्वास बढ़ता है, उस पर अन्धेरे में उपचार नहीं हो सकता। ऐसा उपचार निश्चित रूप से प्रभावशाली होता है, भले ही किसी भी पद्धति द्वारा क्यों न किया जाए? मेरा इंजीनियरिंग एवं बिजली के व्यवसाय को छोड़कर चिकित्सा के क्षेत्र में कार्य करने का यही मुख्य कारण रहा है।

स्वावलम्बी चिकित्सा का आधार- आरोग्य षास्त्र

शरीर अविभाज्य है। अतः शरीर के किसी भाग की खराबी अथवा असंतुलन से पूरा शरीर प्रभावित होता है। आरोग्य शास्त्र में तन, मन और चित्त तीनों का एक साथ उपचार होता है, अर्थात् उपचार करते समय समग्रता से विचार किया जाता है। शरीर की प्रतिकारात्मक शक्ति कम न हों, इस बात को प्राथमिकता दी जाती है। जबकि रोग शास्त्र में रोग के कारणों को दूर करने की अपेक्षा कैसे तुरन्त राहत मिले, प्रमुख होता है।

आरोग्य शास्त्र पर आधारित होती है- ''स्वावलम्बी अहिंसक उपचार पद्धतियाँ'', जबकि रोग शास्त्र पर आधारित होती है लक्षणों के आधार पर निदान एवं उपचार करने वाली परावलम्बी चिकित्सा पद्धतियाँ।

स्वावलम्बी उपचार कितना विष्वसनीय?

जैसा कि मैंने पुस्तक के स्वकथन में स्वयं के अनेक रोगों का स्वयं द्वारा सफल उपचार का वर्णन किया। परन्तु गत 25 वर्षो में मेरे परामर्श द्वारा स्वयं का उपचार स्वयं कर हजारों रोगी स्वस्थ हुए। मात्र चन्द घटनाओं का उल्लेख करना मैं आवश्यक समझता हूँ-

जोधपुर के प्रमुख उद्योगपति स्व. श्री दुर्गाप्रसादजी साबु लगभग 25 वर्षो से अस्थमा से पीड़ित थे। उन्होंने देश-विदेश में विभिन्न चिकित्सा पद्धतियों से उपचार कराया, परन्तु कोई लाभ नहीं हुआ। उनका उपचार हेतु 1991 में मुझ से सम्पर्क हुआ। मैंने एक्युप्रेशर से उपचार करने की विधि उन्हें समझायी। मात्र दो दिनों में उनको पचास प्रतिशत से अधिक राहत मिली।

भूतपूर्व प्रशासनिक अधिकारी श्री रंगरूपमलजी कोठारी को 2005 में एपेन्डिक्स के कारण असहनीय पीड़ा हुई। मैंने उन्हें दर्दस्थ भाग पर दाणामेथी लगाने एवं चुम्बक का उत्तरी धुरव घूमाने का परामर्श दिया। परिणामस्वरूप उन्हें दर्द में तुरन्त राहत होने लगी और आज तक वैसी समस्या उन्हें पुनः नहीं हुई। उनके एक मित्र श्री सी.डी. देवल (भूतपूर्व प्रषासनिक अधिकारी एवं एम.एल.ए.) के बच्चे के मूत्र में रक्त आ रहा था। जयपुर के गुर्दे के विशेषज्ञ ने गुर्दे के शल्य चिकित्सा का परामर्श दिया। परन्तु मैंने उन्हें मूत्राशय बियोल मेरेडियन की ताप ऊर्जा नियंत्रित करने हेतु आवश्यक परामर्श दिया, जिसे करने से बच्चे को तुरन्त राहत मिली। 48 घण्टों के पष्चात् पुनः परीक्षण कराने पर रिपोर्ट में रोग के लक्षण नहीं मिले और न हीं आज तक वैसी समस्या की पुनरावर्ती हुई।

जोधपुर के श्री प्रकाशजी चैपड़ा एवं श्री महेशजी गोयल का मधुमेह 400 से अधिक रहता था। उन्हें प्रतिदिन तीन बार इंसुलिन लेना पड़ता था। परन्तु स्वावलम्बी उपचार से 5 से 7 दिनों में ही मधुमेह पर नियंत्रण कर सके। आज लगभग 20 वर्षो के पष्चात् भी उनका मधुमेह नियंत्रण में है। मधुमेह जिन्हें आधुनिक चिकित्सा पद्धति असाध्य रोग मानती है। विस्तृत जानकारी हेतु लेखक की 'आरोग्य आपका' एवं 'बिना दवा मधुमेह का प्रभावषाली उपचार' पुस्तकों का अध्ययन करें।

विज्ञापनों से प्रभावित उपचार

आज चिकित्सा के बारे में असमंजस की स्थिति है। अधिकांश प्रचलित चिकित्सा पद्धतियों से सम्बन्धित चिकित्सक प्रायः एकपक्षीय चिन्तन के पूर्वाग्रहों से ग्रसित होते हैं। उनके चिन्तन में समग्रता एवं व्यापक दृश्टिकोण एवं समन्वय का अभाव होता है। जनसाधारण से ऐसी अपेक्षा भी नहीं की जा सकती कि वे शरीर, स्वास्थ्य और चिकित्सा पद्धतियों के बारे में विस्तृत जानकारी रखें। अधिकांश रोगियों को न तो रोग के बारे में सही जानकारी होती है और न वे अप्रत्यक्ष रोगों को रोग ही मानते हैं। जब तक रोग के स्पश्ट लक्षण प्रकट न हो जाएँ, रोग सहनशक्ति के बाहर नहीं आ जाता, तब तक शरीर में उपस्थित विकारों, असन्तुलनों, विजातीय तत्त्वों, जो रोग के जनक होते हैं, ध्यान ही नहीं जाता। रोग के लक्षण प्रकट होने के बाद भी रोगी का एक मात्र उद्धेश्य येन-केन-प्रकारेण उत्पन्न लक्षणों को हटाकर अथवा दबाकर तुरन्त राहत पाने का होता है। जैसे ही उसे आराम मिलता है, रोगी अपने आपको रोगमुक्त समझने लगता है।

रोगी रोग का कारण स्वयं को नहीं मानता और न अधिकांश चिकित्सक उपचार में रोगी की सजगता एवं मानसिक भागीदारी को आवश्यक समझते हैं। प्रायः डाक्टरों के पास उमड़ने वाली भीड़ और विज्ञापन ही उसको उपचार की विधि चुनने हेतु प्रेरित करते हैं। रोगी का डाक्टर एवं दवा के प्रति आवश्यकता से अधिक विश्वास होने तथा स्वयं के अज्ञान, असजगता एवं तर्क पूर्ण सम्यक् चिन्तन के अभाव में, वह निदान की सत्यता और किए जा रहे उपचार की उपयोगिता एवं प्रभाव की यथार्थता का चिकित्सक से स्पश्टीकरण माँगना आवश्यक नहीं समझता। चिकित्सक भी प्रायः रोगी की षंकाओं का संतोशजनक, सम्यक् समाधान देने की बजाय उनकी उपेक्षा कर देते हैं। रोगी के पास अन्य कोई विकल्प न होने से मजबूरी के कारण आधुनिक चिकित्सकों से उपचार कराना पड़ता है।

आधुनिक चिकित्सा पद्धति कितनी वैज्ञानिक?

उपचार करते समय शरीर के साथ-साथ मन, भाव और आत्मा के विकारों का उपचार ही सच्चा उपचार होता है, परन्तु विज्ञापन के इस युग में स्वविवेक के अभाव तथा व्यक्ति में दुःख, पीड़ा, वेदना सहन करने की शक्ति घटने के कारण, भले-बुरे का

चिन्तन किए बिना अधिकांश व्यक्ति और सरकार ऐलोपैथिक चिकित्सा को ही वैज्ञानिक, प्रभावषाली मान रही है। उसके क्या दुश्परिणाम हो रहे हैं, षोध का विशय है।

अंग्रेजी दवाइयें शरीर की प्रतिकारात्मक शक्ति घटाती है

आज उपचार भी एक फैशन का रूप लेता जा रहा है और उसका कारण है भविश्य में दवाओं के दुश्प्रभावों से होने वाले दुश्परिणामों के प्रति अज्ञान। डा◌ॅक्टरों के झूठे आश्वासन, लुभावने विज्ञापन, रोगी में धैर्य, सहनशक्ति, स्वचिंतन एवं कर्म सिद्धान्त की जानकारी का अभाव। शरीर में इतनी क्षमता होती है कि वह छोटी-मोटी व्याधियों को स्वयं दूर कर लेता है। फिर भी रोग होते ही हम अपने स्वजनों और मित्रों को आधुनिक अस्पतालों में ले जाकर तुरन्त उपचार कराना अपना कर्तव्य एवं साधारण से रोग में भी बड़े से बड़े डा◌ॅक्टर के पास जाकर निदान एवं परीक्षण करना हम अपनी आन, बान और शान समझते हैं। हमारा अपने शरीर की क्षमताओं पर विश्वास घटता जा रहा है। हम निदान एवं उपचार की विष्वसनियता गौण कर चिकित्सकों पर अंधश्रद्धा करते हैं। जो ऐसा नहीं करते हैं, उन्हें हम मूर्ख अथवा कंजूस कह देते हैं।

क्या हम कभी इस बात का चिंतन करते हैं कि जो गरीब हैं, दवा कम लेते हैं, डा◌ॅक्टरों के चक्कर कम लगाते हैं, उनके शरीर में रोग प्रतिरोधक क्षमता, बराबर पौश्टिक आहार न लेने के बावजूद भी अपेक्षाकृत ज्यादा क्यों होती है? हम यह भूल जाते हैं कि अंग्रेजी दवाइयाँ हमारे शरीर की प्रतिरोधक क्षमता घटाती है। उनका दुश्प्रभाव होता है। अतः साधाराण से रोगों में हम जितने ज्यादा अस्पताल के चक्कर काटेंगे, दवाइयों का सेवन करेंगे, उतने ही दवाइयों के पराधीन बन जायेंगे।

अच्छी चिकित्सा कौनसी? अहिंसक अथवा हिंसक

किसी प्राणी को दुःख दिये बिना हिंसा, क्रूरता, निर्दयता हो नहीं सकती। पषु भले ही बेजुबान हो, बेजान नहीं होते। जो प्राण हम दे नहीं सकते, उसको लेने का हमें क्या अधिकार? दुःख देने से दुःख ही मिलेगा। प्रकृति के न्याय में देर हो सकती है, अंधेर नहीं। जो हम नहीं बना सकते, उसको स्वार्थवश नष्ट करना बुद्धिमता नहीं। अतः चिकित्सा के नाम पर प्रत्यक्ष-परोक्ष रूप से हिंसा करना, कराना और करने वालों को सहयोग देना अपराध है। जिसका परिणाम हिंसा में सहयोग देने वालों को भविष्य में रोगी बन भुगतना पड़ेगा। यदि किसी का आषीर्वाद हमारा भला कर सकता है तो हिंसक दवाओं के माध्यम से शरीर में जाने वाले उन बेजुबान प्राणियों की बद्-दुआओं की तरंगे, हिंसा में प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से सहयोग करने वालों के शरीर को दुष्प्रभावों से ग्रसित करे तो आश्चर्य नहीं।

अहिंसा में विश्वास रखने वाला अहिंसक व्यक्ति हजारों रुपयों का प्रलोभन देने के बावजूद जानबूझ कर एक चिंटी को भी नहीं मार सकता। जिन पदार्थों में जानवरों के अवयव होते हैं उनको खाने अथवा उपयोग में लेने से यथासंभव परहेज करता है। उसके घर कोई अतिथि आए तो उसको सात्विक भोजन कराना अपना कर्तव्य समझता है। यदि अतिथि मांसाहार हेतु आग्रह करे तो, स्पष्ट मना कर देता है। मानव सेवा के नाम पर मांसाहार द्वारा अतिथि का स्वागत उसको स्वीकार नहीं। जैन संत एकेन्द्रिय से पंचेन्द्रिय, सूक्ष्म से सूक्ष्मतम जीवों तक की हिंसा से पूर्णरूपेण बचने हेतु कठिनतम परीषह सहन करते हैं।

आज के युग में प्रभावशाली अहिंसक उपचारों का विकल्प होते हुए भी जब कोई अहिंसा प्रेमी चिकित्सा के क्षेत्र में होने वाली हिंसा का अज्ञानवश समर्थन करते हैं तो उनका आचरण उचित नहीं लगता। परन्तु आज अहिंसा प्रेमियों द्वारा भी चिकित्सा में अहिंसा न केवल उपेक्षित एवं गौण होती जा रही है, अपितु ऐसी हिंसा को आवश्यक बतलाने का प्रयास भी किया जा रहा है। वास्तव में कर्म सिद्धान्त के अनुसार चिकित्सा हेतु प्रत्यक्ष या परोक्ष हिंसा करना, कराना और करने वालों की अनुमोदना करना, भले ही मन, वचन अथवा काया से हो, कर्जा चुकाने हेतु ऊँचे ब्याज पर कर्जा लेने के समान नासमझी होती है। परन्तु आधुनिक चिकित्सा में अहिंसा के सिद्धान्त की कितनी उपेक्षा होती है, प्रायः हम सभी को ज्ञात है।

आधुनिक निदान कितना विष्वसनीय?

प्रत्येक व्यक्ति का खान-पान, रहन-सहन, आचार-विचार, आवास-प्रवास, आयु, व्यवसाय, कत्र्तव्य, जिम्मेदारियाँ, रुचि, स्वभाव, सहनशक्ति, सोच, शारीरिक और मानसिक क्षमता, पारिवारिक एवं व्यावसायिक परिस्थितियाँ, रीति-रिवाज, धार्मिक

संस्कार और मान्यताएँ, मौसम की स्थिति और उसमें होने वाला बदलाव, सहयोगी एवं द्वेशी लोगों का योग आदि दैनिक जीवन में ऐसे अनेक कारण होते हैं जो व्यक्ति के स्वास्थ्य को प्रभावित करते हैं, व्यक्ति में तनाव अथवा प्रसन्नता का कारण बनते हैं।

क्या हमारी भावनाओं, संकल्पों, विकल्पों, आवेगों, संवेदनाओं, इन्द्रियों के विशयों की ग्रहण शक्ति की विभिन्नता का स्वास्थ्य से संबंध होता है? क्या हमारा मनोबल, सहनशक्ति, उत्साह, सकारात्मक सोच, खुशी के प्रसंग आदि स्वास्थ्य को प्रभावित करते हैं? विभिन्न इन्द्रियों के माध्यम से ग्रहण किए गए, एक जैसे विशय जैसे- देखना, सुनना, बोलना, स्वाद, सुगन्ध, स्पर्श सभी व्यक्तियों पर एक-सा प्रभाव क्यों नहीं डालते? उनके प्रति रुचि अथवा अरुचि क्या हमारे स्वास्थ्य की अभिव्यक्ति नहीं करती? क्या रोगी की आयु, अलग-अलग मौसम, शरीर से विसर्जित होने वाली अलग-अलग प्रकार की ध्वनियाँ जैसे (हिचकी, खर्राटे, जम्भाईयाँ आदि) एवं शरीर से निकलने वाले तरल पदार्थ (जैसे आंखों से आंसू, मुंह से लार, बलगम, नाक से श्लेश्मा, कान से पीब, शरीर से पसीना, मल-मूत्र की स्थिति) एवं त्वचा का वर्ण, मोटापा अथवा दुबलापन, रोग की सक्रियता का समय आदि से स्वास्थ्य प्रभावित होता है। कहने का आशय यही है कि प्रत्येक व्यक्ति पर उपर्युक्त बातों का अलग-अलग प्रभाव पड़ता है, जिसका अनुभव प्रत्येक व्यक्ति को अलग-अलग होता है।

परन्तु आज लक्षणों एवं रासायनिक परीक्षणों के आधार पर स्वास्थ्य का परामर्श देते समय अथवा रोग की अवस्था में निदान करते समय प्रायः अधिकांश चिकित्सक अथवा स्वास्थ्य विशेशज्ञ व्यक्ति के स्वास्थ्य को प्रभावित करने वाले उपर्युक्त प्रत्यक्ष एवं परोक्ष प्रभावों का समग्रता से विश्लेशण नहीं करते।

सत्य की पूर्णतः अभिव्यक्ति नहीं की जा सकती। वह तो व्यक्ति के स्वयं की अनुभूति का विशय होता है। जो भी देखा जाता है, सुना जाता है, यंत्रों अथवा परीक्षणों से पता लगाया जाता है, वह सत्यांश ही होता है। ऐसा अधूरा निदान और परामर्श सदैव कैसे शत-प्रतिशत सत्य और पूर्ण हो सकता है, अपने आपको स्वस्थ रखने की कामना रखने वालों से सम्यक् चिन्तन की अपेक्षा रखता है। अतः स्वस्थ रहने हेतु व्यक्ति को निदान एवं उपचार के प्रति सम्यक् चिन्तन एवं सजगता, पूर्ण स्वस्थता की प्राप्ति के लिए अनिवार्य होती है। पराधीन अथवा दूसरों पर आश्रित रहने वाला व्यक्ति स्थायी स्वास्थ्य को प्राप्त नहीं कर सकता।

चिकित्सा हेतु व्यापक दृश्टिकोण आवश्यक

आज लोगों की ऐसी प्रवृत्ति बन गई है कि वे वैज्ञानिक तथ्यों को ही सुनना, समझना और ग्रहण करना पसन्द करते हैं। भले ही वे भौतिक विज्ञान एवं स्वास्थ्य विज्ञान के मूल सिद्धान्तों में अन्तर से अपरिचित ही क्यों न हों? शरीर में रोग के अनुकूल दवा बनाने की क्षमता होती है और यदि उन क्षमताओं को बिना किसी बाह्य दवा और आलम्बन विकसित कर दिया जाता है तो उपचार अधिक प्रभावषाली, स्थायी एवं भविश्य में पड़ने वाले दुश्प्रभावों से रहित होता है। वास्तव में आज स्वास्थ्य विज्ञान भौतिक विज्ञान तक ही सीमित हो रहा है। अपना महत्त्व बताने हेतु भ्रामक विज्ञापनों का उसे सहारा लेना पड़ रहा है। फलतः प्रकृति के सनानत सिद्धान्तों की उपेक्षा विज्ञान की आड़ में हो रही है। बुराई को गलत न मानने वाले बुराई को नहीं छोड़ सकते। ठीक उसी प्रकार आधुनिक चिकित्सा पद्धति के दुश्प्रभावों को समझे बिना न तो उसके प्रति हमारा मोह भंग होता है और न अन्य चिकित्सा पद्धतियों को जानने, समझने और अपनाने के प्रति जनसाधारण का आकर्शण ही सम्भव है। प्रत्येक चमकती वस्तु सोना नहीं होती। ठीक उसी प्रकार आधुनिक चिकित्सा का निदान सदैव सही हो और उपचार भी सभी रोगों में लाभकारी और प्रभावशाली ही हो यह आवश्यक नहीं। आज रोग के लिए डा◌ॅक्टर न होकर डा◌ॅक्टर के लिए रोग है, समझा जाए तो अतिशयोक्ति नहीं। जितने व्यक्ति दवाओं के दुश्प्रभाव और गलत निदान द्वारा होने वाले उपचार से पीड़ित हैं अथवा मृत्यु को प्राप्त करते हैं, उतने व्यक्ति अकाल, तूफान, युद्ध, महामारी आदि प्रकृति के अन्य प्रलयों में मिलकर भी नहीं मरते। यह कटुसत्य है तथा चिन्तन और चिन्ता का विशय है।

आज चिकित्सा करवाते समय उपचार की प्रासंगिकता के बारे में प्रायः रोगी तनिक भी चिन्तन-मनन नहीं करते। चिकित्सक से निदान की सत्यता के संबंध में अपनी शंकाओं और उपचार से पड़ने वाले दुश्प्रभावों के बारे में स्पश्टीकरण नहीं लेते। रोग का मूल कारण जाने बिना उपचार प्रारम्भ करवा देते हैं। आज यह दवा, कल दूसरी, परसों तीसरी दवा। आज यह चिकित्सक, कल दूसरा चिकित्सक, परसों अन्य चिकित्सक। कभी यह अस्पताल, कभी दूसरा अस्पताल तो कभी अन्य अस्पताल। आज एक

चिकित्सा पद्धति, चन्द रोज बाद दूसरी पद्धति और अगर रोग मुक्त न हो तो न जाने कितनी-कितनी चिकित्सा पद्धतियाँ बदलते संकोच नहीं करते। उपचार करवाते समय प्रायः स्वयं की असजगता, अविवेक और सही चिन्तन न होने से हमारी सोच लुभावने भ्रामक विज्ञापनों, डा‍ॅक्टरों के पास पड़ने वाली भीड़ से प्रभावित होती है। हम असहाय, हताश बन चिकित्सकों की प्रयोगशाला बनते तनिक भी संकोच नहीं करते। क्या कभी कोई चिकित्सक बता सकता है कि रोगी को दी जाने वाली दवा रोग को कैसे ठीक करती है? क्या उसका दुष्प्रभाव तो नहीं पड़ेगा? दवाई के निर्धारण का आधार क्या है? इतना पूछने पर डा‍ॅक्टर की क्या प्रतिक्रिया होती है, हम सब परिचित हैं।

स्वास्थ्य हेतु स्वयं की सजगता सबसे प्राथमिक

आज अधिकांश चिकित्सकों का दृष्टिकोण पूर्वाग्रहों से ग्रसित होता है। अहम् से ओतप्रोत है। दुष्प्रभावों के प्रति उपेक्षित होता है। उपचार में साधन, साध्य एवं सामग्री की पवित्रता संदिग्ध होती है। उपचार में आत्मा और मन के विकार पूर्ण रूप से उपेक्षित होते हैं। अर्थात् उपचार की प्राथमिकताएँ ही गलत हैं। निदान अपूर्ण होता है तब सही उपचार, पूर्ण स्वास्थ्य के प्राप्ति की आशा, मिथ्या कल्पना नहीं तो क्या? स्वस्थता के लिए आवश्यक होता है सकारात्मक सोच, सात्त्विक एवं संयमित जीवन चर्या, नियमित मौन, ध्यान एवं वर्तमान का अपनी क्षमतानुसार अधिकतम उपयोग हेतु सम्यक् पुरुशार्थ तथा प्राणीमात्र के प्रति दया, करुणा, मंगल मैत्री की भावना। उपचार की आवश्यकता पड़ने पर कार्य में लिए जाने वाले साधन, सामग्री जितने पवित्र एवं निर्दोश होते हैं, उतना ही उपचार प्रभावषाली होता है।

ऐसी परिस्थितियों में हमें अपने स्वास्थ्य का खयाल स्वयं को ही रखना होगा। बाजार में मिलने वाली दवाइयाँ नहीं रख सकती। अतः स्वस्थ जीवन जीने के लिए व्यक्ति की सजगता, भागीदारी, दूसरों पर आश्रित न रहने की तीव्रतम भावना आवश्यक होती है।

स्वास्थ्य मंत्रालय से अपेक्षाएँ

स्वास्थ्य मंत्रालय को आधुनिक चिकित्सा पद्धति का अन्धानुकरण करने से पूर्व मौलिक चिकित्सा कौनसी और क्यों?, सही निदान के मापदण्ड क्या?, वैकल्पिक चिकित्सा कौनसी और क्यों?, स्वास्थ्य विज्ञान और भौतिक विज्ञान में अन्तर क्या?, स्वस्थ कौन?, अच्छा स्वास्थ्य कैसा?, रोगी कौन?, रोग क्यों? आदि स्वास्थ्य से जुड़े मूल तथ्यों को परिभाशित करना चाहिये, ताकि अहिंसक चिकित्सा पद्धतियों की उन मापदण्डों के अनुसार तुलना की जा सके। भारत की जनता को रोग मुक्त करने हेतु उनके पास तत्कालीन और दीर्घकालीन क्या योजनाएं है? स्वास्थ्य के नाम पर अरबों रुपयों को खर्चकर अति आधुनिक अस्पतालों के निर्माण एवं चिकित्सकों की संख्या बढ़ने के बावजूद रोग और रोगियों की संख्या में क्यों वृद्धि हो रही है? क्या कहीं मूल में तो भूल नहीं हो रही है? जिस चिकित्सा पद्धति के दुश्प्रभावों से सारी समस्यायें हो रही है, क्या उन्हीं से उसका समाधान प्राप्त करने की भूल तो नहीं हो रही है? विज्ञापन और शीघ्रता के इस युग में जिस मानसिकता में हम जी रहे हैं, जो चिकित्सा न सहज है, न सरल है, न सस्ती है, न स्वावलम्बी है, न अहिंसक है, न पूर्ण है, न दुश्प्रभावों से रहित है, न स्थायी है, फिर भी आधुनिक चिकित्सा को विकसित, वैज्ञानिक, प्रभावशाली मानना कितनी बुद्धिमत्ता है? स्वास्थ्य प्रेमियों के लिए चिन्तन का प्रश्न है।

उपचार से पूर्व सम्यक् चिन्तन आवश्यक

उपरोक्त चर्चा का आशय किसी भी चिकित्सा पद्धति पर आक्षेप लगाना नहीं है। परन्तु निशपक्ष चिन्तन द्वारा प्रकृति के सनातन सिद्धान्तों के प्रति जनसाधारण में विवेक जाग्रत करना मात्र है। अहिंसक चिकित्सा पद्धतियों की प्रभावषीलता एवं लाभ से जनसाधारण को परिचित कराना है, ताकि उनका महत्त्व समझ एवं अध्ययन कर वे आचरण कर सकें। चिकित्सकों से निदान एवं उपचार की सत्यता पर अपनी सम्यक् षंकाओं का समाधान कर सकें। ये सभी बातें वर्तमान में हमारी धारणाओं और परिस्थितियों के अनुकूल हो अथवा नहीं, ये सारी बातें हमें अच्छी लगे अथवा नहीं, प्रकृति के कानून व्यक्तिगत अनुकूलताओं के आधार पर नहीं बदलते।

स्वस्थ रहें या रोगी: फैसला आपका

आधुनिक परीक्षणों पर आधारित एवं डा ॅक्टरों द्वारा प्रमाणित एक ही लक्षणों वाले दो रोगियों के शरीर में रोग का परिवार षत-प्रतिषत एक जैसा नहीं हो सकता। क्योंकि सभी का खान-पान, रहन-सहन, आचार-विचार, चिन्तन-मनन, आसपास का वातावरण एवं परिस्थितियाँ अलग-अलग होती है। अतः दोनों रोगियों के उपचार का समय एवं कार्यकाल की अवधि भी अलग-अलग होती है। अहिंसक चिकित्सा पद्धतियों द्वारा उपचार से प्रायः शरीर में दुश्प्रभावों की संभावना नहीं रहती। उपचार इतने सहज और सरल होते हैं जिसे स्वास्थ्य में रुचि रखने वाला कोई भी व्यक्ति सरलता से सीख, स्वयं कर सकता है। दुर्घटना एवं विषेश अपवादग्रस्त परिस्थितियों को छोड़ उपचार हेतु दवा, डा ॅक्टरों एवं अस्पताल के शरण लेने की आवश्यकता नहीं होती।

क्या जानवरों को उपचार हेतु आवश्यक परामर्श सुविधा प्राप्त होती है? जंगल के जानवर रोग होने पर स्वयं का उपचार कैसे करते हैं? उन्हें उपचार हेतु स्वानुभूति कैसे होती है? क्या उन्हें स्वयं के शरीर विज्ञान की विस्तृत जानकारी होती है? जैसे मोबाइल के पुर्जो की पूर्ण जानकारी न रखने वाला, साधारण जानकारी मात्र से भी उसका उपयोग कर सकता है, उसी प्रकार शरीर विज्ञान की विस्तृत जानकारी न होने के बावजूद रोगी भी आत्म विष्वास के साथ प्रारम्भिक अवस्था में तो 90 प्रतिषत से अधिक रोगों का षीघ्र उपचार कर सकता है। अतः अपने स्वास्थ्य के प्रति सजग व्यक्तियों को ऐसे उपचारों को अवश्य सीख लेना चाहिए। प्रत्येक रोगी में रोग का परिवार अलग-अलग होने से उपचार की आवश्यकता एवं अवधि भी अलग-अलग होती है। उपचार के साधन प्रायः हमारे पास उपलब्ध होते हैं। गलत उपचार से मस्तिश्क तुरन्त प्रतिक्रिया करने लगता है। उपचार से भले ही लाभ न हो, गलत उपचार की तनिक भी संभावना नहीं रहती। अतः जो उपचार रोगी स्वयं कर सकता है, यथासंभव स्वयं ही करना चाहिए। जो उपचार स्वयं न कर सके, उस हेतु चिकित्सक की सेवा लेने से उपचार में अपेक्षित परिणाम षीघ्र मिलने लगते हैं।

हमारी **website: chordiahealthzone.in** में ऐसी विभिन्न चिकित्सा पद्धतियों का विस्तृत विवेचन उपलब्ध हैं। ‘‘आरोग्य आपका’’ पुस्तक में वर्णित ‘‘बिना दवा हृदय रोगों एवं बिना दवा मधुमेह का प्रभावषाली उपचार’’ अवश्य पढ़ें, आपके चिंतन में अवश्य बदलाव आयेगा। हमारे ट्रस्ट द्वारा प्रकाषित अन्य साहित्य, विभिन्न रोगों के उपचार एवं स्वास्थ्य संबंधी जानकारियाँ भी हमारी **website** में उपलबध हैं। जिसको देख अथवा पढ़ साधारण व्यक्ति भी उन उपचारों को स्वयं सीख के कर सकता है। यदि उसके पष्चात् भी किसी को कुछ भी संदेह हो तो वे मुझ से सम्पर्क कर समाधान प्राप्त कर सकते हैं। आप अपने परिजनों, मित्रों एवं षुभ चिंतकों तक मेरी भावना पहुँचाने में सहयोगी बनेंगे तो मानवता की बहुत बड़ी सेवा होगी।

मात्र स्विच चालू करने की कला आपको सीखनी है। आप अंधेरे से प्रकाष में आ सकते हैं। अतः जो व्यक्ति स्वस्थ जीवन जीना चाहते हैं एवं उपचार हेतु जो कार्य स्वयं कर सकते हैं, निःसंकोच आत्मविष्वास के साथ करें एवं अपने चिकित्सक स्वयं बने। जो व्यक्ति स्विच चालू करने जैसी साधारण कला भी सीखना नहीं चाहता एवं दूसरों पर निर्भर रहता है, उसे न चाहते हुए भी कभी अंधेरे में रहना पड़ सकता है।

अच्छे उपचार, चिकित्सा पद्धतियों एवं सही निदान के मापदण्ड क्या हों?, क्या रोग में मात्र राहत पाना ही पूर्ण उपचार हो सकता है?, क्या जीवन भर दवाइयों पर आश्रित रखने वाली चिकित्सा पद्धति को वैज्ञानिक अथवा प्रभावषाली प्रचारित करना उचित है?, क्या शरीर में कोई भी असाध्य रोग अकेला परेषान कर सकता है?, क्या दो रोगी एक जैसे हो सकते हैं?, क्या उपचार हेतु हिंसा उचित है?, क्या मन, भाव एवं आत्मा के विकारों का रोग से सम्बन्ध होता है?, दवाइयों के दुश्प्रभाव क्यों पड़ते हैं? जैसे विशयों पर सम्यक् चिंतन से आपका स्वावलम्बी, अहिंसात्मक चिकित्सा पद्धतियों के प्रति आत्मविष्वास बढ़ेगा। फैसला आपको ही करना है कि ‘‘स्वस्थ रहें या रोगी।’’

अहिंसक चिकित्सा पद्धतियाँ क्यों प्रभावषाली?

चिकित्सा पद्धतियों को मुख्य रूप से दो भागों में विभाजित किया जा सकता है। प्रथम तो बिना दवा वाली स्वावलंबी चिकित्सा पद्धतियाँ तथा दूसरी दवाओं के माध्यम से उपचार करने वाली परावलंबी चिकित्सा पद्धतियाँ। स्वावलंबी चिकित्सा पद्धतियों में स्वयं का उपचार स्वयं द्वारा किया जाता है, उसमें उपचार हेतु दवा अथवा चिकित्सकों पर पूर्णतया निर्भर रहने की आवष्यकता नहीं होती ।

ऐसी स्वावलंबी चिकित्सा पद्धतियों में बिना किसी जीव को प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष कश्ट पहुँचाए पूर्णतः अहिंसक एवं दुश्प्रभावों से रहित सहजता से उपलब्ध साधनों का सहयोग लिया जाता है। इसमें षरीर, मन और आत्मा में जो जितना महत्वपूर्ण होता है, उसको उसकी क्षमता के अनुरूप महत्व एवं प्राथमिकता दी जाती है। प्रकृति के सनातन सिद्धान्तों की उपेक्षा न हो, इस बात का विषेश ध्यान रखा जाता है। षरीर विज्ञान के विषेश जानकारी की आवष्यकता नहीं होती है। ये उपचार सहज, सरल, सस्ते, सर्वत्र उपलब्ध होने से व्यक्ति को सजग, स्वतंत्र, स्वावलंबी एवं सम्यक् सोच वाला बनाते हैं। ये चिकित्सा पद्धतियाँ हिंसा पर नहीं अहिंसा पर, विशमता पर नहीं समता पर, साधनों पर नहीं साधना पर, दूसरों पर नहीं स्वयं पर, क्षणिक राहत पर नहीं , अपितु अंतिम प्रभावषाली स्थायी परिणामों पर आधारित होती हैं। रोग के लक्षणों की अपेक्षा रोग के मूल कारणों को नश्ट करती है, जो षरीर के साथ साथ मन एवं आत्मा के विकारों को दूर करने में सक्षम होती है। ये पद्धतियाँ प्रकृति के सनातन सिद्धान्तों पर आधारित होने के कारण अधिक प्रभावषाली , वैज्ञानिक, मौलिक एवं निर्दोश होती हैं।

वैकल्पिक चिकित्सा कौनसी?

आजकल आधुनिक चिकित्सा के अतिरिक्त अन्य सभी चिकित्सा पद्धतियों को वैकल्पिक चिकित्सा के रूप में मान्यता प्राप्त है, उसमें कितनी सत्यता है प्रत्येक बुद्धिमान, सजग, सम्यक चिन्तनषील व्यक्ति के लिए चिंतन का प्रष्न है।

वैकल्पिक चिकित्सा कौनसी? स्वावलम्बी या परावलम्बी, सहज अथवा दुर्लभ, सरल अथवा कठिन, सस्ती अथवा महंगी। प्रकृति के सनातन सिद्धान्तों पर आधारित प्राकृतिक या नित्य बदलते मापदण्डों वाली अप्राकृतिक, अहिंसक अथवा प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से हिंसा, निर्दयता, क्रूरता को बढ़ावा देने वाली। दुश्प्रभावों से रहित अथवा दुश्प्रभावों वाली। शरीर की प्रतिकारात्मक क्षमता बढ़ाने वाली या कम करने वाली। रोग का स्थायी उपचार करने वाली अथवा राहत पहुंचाने वाली। सारे शरीर को एक इकाई मानकर उपचार करने वाली अथवा शरीर का टुकड़ों-टुकड़ों के सिद्धान्त पर उपचार करने वाली।

उपर्युक्त मापदण्डों के आधार पर हम स्वयं निर्णय करें कि कौनसी चिकित्सा पद्धति मौलिक है और कौनसी वैकल्पिक? मौलिकता का मापदण्ड भ्रामक विज्ञापन अथवा संख्याबल नहीं होता। करोड़ों व्यक्तियों के कहने से दो और दो पांच नहीं हो जाते। दो और दो तो चार ही होते हैं। अतः हमें स्वीकार करना होगा कि स्वावलम्बी चिकित्सा पद्धतियाँ भी मौलिक चिकित्सा पद्धतियाँ हैं, वैकल्पिक चिकित्सा पद्धतियाँ नहीं हैं?

किसी बात को बिना सोचे समझे स्वीकार करना यदि मूर्खता है तो अनुभूत सत्य को बिना सम्यक् चिन्तन एवं तर्क की कसौटी पर कसे, प्रचार-प्रसार के अभाव में पूर्वग्रसित गलत धारणाओं के कारण अस्वीकार करने वालों को कैसे बुद्धिमान कहा जा सकता है?

चिकित्सा हेतु हिंसा अनुचित

आधुनिक स्वास्थ्य विज्ञान की जानकारी हेतु करोड़ों जानवरों का प्रतिदिन विच्छेदन किया जाता है। दवाइयों के निर्माण और उनके परीक्षण हेतु जीव-जन्तुओं को निर्दयता, क्रूरतापूर्वक यातना दी जाती है। किसी को दुःख देकर सुख और शांति कैसे मिल सकती है? यह तो पशुता एवं अनैतिकता का लक्षण है। जैसा करेंगे वैसा फल मिलेगा, यह कर्म का सनातन सिद्धान्त है। प्रकृति के न्याय में देर हो सकती है परन्तु अन्धेर नहीं। जो हम नहीं बना सकते, उसको स्वार्थवश नश्ट करना बुद्धिमता नहीं। अतः चिकित्सा के नाम पर प्रत्यक्ष-परोक्ष रूप से हिंसा करना, कराना और करने वालों को सहयोग देना अपराध है। जिसका परिणाम हिंसा में सहयोग देने वालों को भविश्य में रोगी बन भुगतना पड़ेगा। हिंसक दवाओं के माध्यम से शरीर में जाने वाली उन बेजुबान प्राणियों की बद-दुवाओं की तरंगें शरीर को दुश्प्रभावों से ग्रसित करे, तो आश्चर्य नहीं। अतः चिकित्सा हेतु प्रत्यक्ष या परोक्ष हिंसा, कर्जा चुकाने हेतु ऊँचे ब्याज पर कर्जा लेने के समान नासमझी होती है।

स्वावलम्बी चिकित्सा पद्धतियों के प्रति सरकारी दृष्टिकोण

आज हमारा स्वास्थ्य मंत्रालय अपने कर्तव्यों, दायित्वों से पूर्ण रूप से अनभिज्ञ प्रतीत हो रहा है। सारे स्वास्थ्य मंत्रालय पर अंग्रेजी चिकित्सा पद्धति से संबंधित विशेशज्ञों, दवा निर्माताओं, समर्थकों, प्रशंसकों का एक छत्र आधिपत्य है। परिणाम स्वरूप अंग्रेजी चिकित्सा पद्धति को ही लगभग पूर्ण रूपेण सर्वे-सर्वा माना जा रहा है।

स्वास्थ्य मंत्रालय के बजट का अधिकांश प्रतिशत उन्हीं पर खर्च किया जा रहा है। स्वास्थ्य मंत्रालय की अंग्रेजी दवाइयों से पड़ने वाले दुश्प्रभावों को छिपाने एवं सिर्फ फायदे के एकपक्षीय मिथ्या आंकड़ों को प्रचारित करने की प्रवृति से राश्ट्र की भोली-भाली जनता भ्रमित हो, अपने स्वास्थ्य के साथ खिलवाड़ कर रही है। फलतः स्वास्थ्य संबंधी समस्यायें अनियंत्रित करने में स्वास्थ्य मंत्रालय की नीतियाँ आग में घी का काम कर रही हैं।

स्वास्थ्य मंत्रालय के प्रभारी अधिकारी ध्यान, स्वाध्याय, एक्युप्रेषर, चुम्बक, षिवाम्बु, स्वर जैसी अनेक प्रभावषाली अहिंसात्मक चिकित्सा पद्धतियों के संबंध में न तो उसमें कार्यरत विशेशज्ञों से विचार विमर्श करना आवश्यक समझते हैं और न उन विशयों पर प्रकाशित शोध पूर्ण साहित्य की खोज कर अध्ययन करने में रुचि रखते हैं। वे अपने पूर्वाग्रह एवं दवा निर्माताओं के दबाव के कारण ऐसी प्रभावषाली पद्धतियों को बिना सोचे-समझे एवं बिना अध्ययन किये वैकल्पिक, अवैज्ञानिक, अनुपयोगी, अप्रभावी बताकर नकार देते हैं, जो राश्ट्र का दुर्भाग्य ही समझना चाहिए। कारण चाहे जो हों, तथाकथित अच्छी प्रभावशाली अहिंसक स्वावलंबी मौलिक चिकित्सा पद्धतियाँ वर्तमान में सरकारी उपेक्षा की शिकार है। सरकार द्वारा न तो उन पर शोध को प्रोत्साहन दिया जा रहा है और न उनके प्रशिक्षण व उपचार व्यवस्था की तरफ सरकार का विशेश ध्यान ही जा रहा है। सरकारी मान्यता और सहयोग का तो प्रश्न ही नहीं। उनकी प्रभावशीलता, अच्छाइयों को बिना सोचे समझे, बिना अध्ययन किये नकारा जा रहा है। भले ही वे उपलब्ध चिकित्सा सुविधाओं के मापदंडों में सरकारी मान्यता प्राप्त वैज्ञानिक समझी जाने वाली चिकित्सा पद्धतियों से काफी आगे हो।

अच्छी चिकित्सा पद्धति कौनसी?

अच्छी चिकित्सा पद्धति के लिए आवश्यक होता है रोग के मूल कारणों का प्रारम्भिक अवस्था में ही सही निदान, तुरन्त दुश्प्रभावों से रहित प्रभावशाली स्थायी उपचार। जो पद्धति सहज, सरल, सस्ती, स्वावलंबी एवं अहिंसक होने के साथ-साथ शरीर, मन, वाणी, भाव और आत्मा के विकारों को कम करने में सक्षम हो। जिन चिकित्सा पद्धतियों में करणीय-अकरणीय, भक्ष्य-अभक्ष्य, अहिंसा-हिंसा, न्याय- अन्याय, वर्जित-अवर्जित का विवेक हों, वे ही चिकित्सा पद्धतियाँ अपने आपको वैज्ञानिक एवं सर्वश्रेश्ठ होने का दावा कर सकती हैं?

मेरी भावना

भावना दिन रात मेरी, सब सुखी संसार हो। सत्य संयम षील का, व्यवहार बारम्बार हो।
धर्म के विस्तार से, संसार का उद्धार हो। पाप का परित्याग हो, और पुण्य का संचार हो।
ज्ञान की सद् ज्योति से, अज्ञान तम का नाष हो। धर्म के सद् आचरण से, षान्ति का आभास हो।
षान्ति सुख आनन्द का, प्रत्येक घर में वास हो, वीर वाणी पर सभी, संसार का विष्वास हो।
रोग, भय और षोक, होवे दूर हे परमात्मा। ज्योति से परिपूर्ण होवे, सब जगत की आत्मा।।